दिव्य प्रकाश दुबे
के राइटर्स रूम से

गुड्डू चौपाटी

साधना जैन

जुहू चौपाटी
(उपन्यास)

जुहू चौपाटी

साधना जैन

हिन्द युग्म

ISBN : 978-81-948443-6-5
प्रकाशकः
हिंद युग्म
सी-31, सेक्टर-20, नोएडा (उ.प्र.)-201301
फ़ोन- +91-120-4374046
मुद्रक ः थॉमसन प्रेस, दिल्ली
आवरण फोटो : अब्दर रहमानी हाज़िर
कला-निर्देशन ः विजेन्द्र एस विज
पहला संस्करण ः 2021
मूल्य ः ₹150
© साधना जैन
Juhu Chowpatty
A novel by Sadhna Jain
Published By
Hind Yugm
C-31, Sector-20, Noida (UP)-201301
Phone : +91-120-4374046
Email : sampadak@hindyugm.com
Website : www.hindyugm.com
First Edition : 2021
Price : ₹150

मम्मी-पापा के लिए,
जिनका होना मेरे लिए ज़रूरी है।

दो से ज़्यादा शब्द

हम सभी पर किसी न किसी ने 'पहली' बार भरोसा किया था। जब मैंने अपना राइटर्स रूम को बनाने का फ़ैसला किया तो जो सबसे पहला ख़याल मेरे मन में आया कि मुझ पर ऐसे बहुत लोगों का उधार है जिन्होंने मुझ पर पहली बार भरोसा किया था। उस उधार को चुकाने का बस एक ही तरीक़ा था कि मैं कुछ ऐसे लोगों पर भरोसा करूँ जो मुझसे बेहतर हों और जिनके अंदर कहानी सुनाने की भूख मुझसे ज़्यादा हो।

मेरे राइटर्स रूम प्रोजेक्ट में पहला प्रोजेक्ट 'दिल लोकल' था जो Audible पर आ चुका है। मेरे इस राइटर्स रूम में विकसित हुए कुछ ऑडियो प्रोजेक्ट, वेब सीरीज़ आने वाले समय में आपके सामने होंगे।

मेरी कोशिश यही रही है कि हर बार नयी तरह से कहानी को पेश किया जाए। कहानी एक दम नए कलेवर में हो। ऐसी कहानियाँ हों जिनको लिखने में, लिखवाने में, मेंटर करने में मुझे घबराहट हो। ठीक वैसे ही जैसे पहली किताब के आने से पहले घबराहट होती है।

मैं जब छोटा था तो मुझे अपने मोहल्ले में आने वाले किसी भी मदारी के छोटे-मोटे जादू वाले करतब देखने में बहुत मज़ा आता था। मेरे बालमन को यह विश्वास था कि ये ट्रिक नहीं है, सचमुच का जादू है। मुझे अब भी जादू पर यक़ीन है। मुझे मालूम है कहानियों का असर जादू की तरह होता है।

मैंने ऐसा कई बार देखा है कि किसी लेखक से जब ये पूछो कि क्या लिखना चाहिए तो लोग जवाब देते हैं कि जो तुम्हें पता हो उसके बारे में लिखो। ये अच्छी सलाह है लेकिन मेरा मानना है कि अगर हम केवल वो लिखेंगे जिसके बारे में हमें पता है तो बहुत कम चीज़ों को लिख पाएँगे। मुझे लगता है कि हमें उन चीज़ों के बारे में भी लिखना चाहिए जो बार-बार हमारा ध्यान अपनी और खींचती हैं, हमें उकसाती हैं, बिल्कुल जादू के जैसे। ये जादू मैं अकले नहीं कर सकता था। मुझे ऐसे बहुत लोग चाहिए थे जो मेरे साथ उस जादू के होने में यक़ीन करें। क्योंकि अगर मुझे कहानी पर यक़ीन होगा तो पाठक को भी उस कहानी पर यक़ीन आकर रहेगा। कहानियाँ एक तरीक़े का भरोसा ही तो हैं कि एक दिन सब ठीक हो जाएगा। कोरोना ने पिछले एक साल में इस पूरी दुनिया को बदल दिया है। हमें पहले से ज़्यादा एक-दूसरे पर भरोसा करने की ज़रूरत है।

साधना जैन की यह पहली किताब है। मुझे पूरा विश्वास है कि आने वाले समय में साधना और भी बेहतर लिखती रहेंगी। आपको किताब अच्छी-बुरी जैसी भी लगे, ज़रूर बताएँ।

आपमें से बहुत लोगों के मन में यह सवाल होगा कि इस राइटर्स रूम का हिस्सा कैसे बनें। उस विषय में जानकारी मैं समय आने पर दूँगा। फ़िलहाल तो बस इतना ही कह सकता हूँ कि मेरे राइटर्स रूम में उन लोगों के लिए हमेशा जगह खुली है जिनको कहानियों में यक़ीन है, जिनको इस बात का भरोसा है कि कहानियाँ दुनिया बदल सकती हैं।

With love, Luck & Light.

दिव्य प्रकाश दुबे
दिसंबर 2020, मुंबई
www.divyaprakash.in
shrewithdp@gmail.com

पाठक के नाम चिट्ठी

प्रिय पाठक,

यह हमारे बीच होने वाला किसी भी तरीक़े का पहला संवाद है। और यही आशा है कि ऐसे बहुत से संवाद हमारे बीच भविष्य में बने रहें। आप से दो बातें करनी थीं, तो सोचा क्यों न आपको एक चिट्ठी लिखी जाए।

कुछ लोगों का सपना ही लेखक बनना होता है। उनकी हर किताब एक सोचा-समझा विचार होती है। लेकिन मेरा ऐसा कोई सपना नहीं था। बस ऐसे ही एक दिन मेरे एक ख़याल में एक लड़की की तस्वीर उभरी जो समंदर के किनारे खड़ी डूबता हुआ सूरज देख रही थी। फिर इस ख़याल ने धीरे-धीरे एक कहानी का आकार ले लिया। इस किताब को लिखते हुए मुझे बेचैनी तो कई बार महसूस हुई पर किसी भी अनचाही घबराहट से मेरा वास्ता कभी नहीं पड़ा। मगर जैसे-जैसे इस किताब की आप तक पहुँचने के बीच की दूरी कम होती गई, मेरी घबराहट का ग्राफ़ भी धीरे-धीरे ऊँचाई छूने लगा। इस बार यह सब जाना-पहचाना था।

सालों से एक लंबी बीमारी से लड़ते-लड़ते मेरा घर से बाहर की दुनिया से नाता एक तरह से टूट ही गया है। अब मुझे कहीं भी भीड़ में जाते हुए या अजनबी चेहरों से आमना-सामना करते हुए एक अजीब-सा डर लगता है। घबराहट होती है। अपनी कमी को दूसरों की आँखों में तरस या निराशा के रूप में देखने के ख़ौफ़ ने मुझे काफ़ी हद तक ख़ुद में ही सीमित कर दिया है। इसलिए जब इस किताब के पब्लिश होने का समय नज़दीक आया तो यही ख़ौफ़ मुझे हर पल खाने लगा। मुझे यही लगता जैसे यह किताब नहीं, मैं ख़ुद को दुनिया के सामने ला रही हूँ। शायद पहली किताब के वक़्त उसे लिखने वाले की घबराहट उसकी किसी कमज़ोरी का ही आईना होती है।

एक किताब लिख लेने भर से कोई लेखक नहीं बन जाता। दुनिया भले ही आपको लेखक बुलाने लगे, मगर ख़ुद को लेखक कहने तक का सफ़र बहुत लंबा होता है। मैं नहीं जानती इस दूरी को मैं कभी तय कर पाऊँगी या नहीं, पर इतना ज़रूर जानती हूँ कि जब मैंने शुरुआत कर ही ली है तो अब पीछे मुड़कर देखना कोई विकल्प नहीं रह जाता।

अब किताब आपके हाथों में है। अच्छी या बुरी जैसी भी लगे आप लिखकर ज़रूर बताएँ। मेरी बीमारी की जानकारी को अपनी निष्पक्षता पर धुंध की तरह न जमने दें। यक़ीन मानिए मैं मानसिक रूप से बहुत मज़बूत हूँ। नये लोगों से न मिल पाने का डर मात्र मेरी एक कमज़ोरी है। शायद लिखते रहना मेरी इस कमज़ोरी की दवा बन जाए।

जाते-जाते बस इतना ही कि आप इसे पढ़ें तो एक काल्पनिक कहानी मानकर ही पढ़ें। इस किताब का असल दुनिया से कोई लेना-देना नहीं है। आजकल दुनिया में इतना कुछ हो रहा है और उसके बारे में लोग सोशल मीडिया पर इतना कुछ लिख रहे हैं कि लगता है कि इस दुनिया को काल्पनिक कहानियों की बहुत ज़रूरत है ताकि कुछ देर के लिए ही सही अपनी असल ज़िंदगी से भागकर उनके संसार में सुकून खोजा जा सके।

साधना जैन
jainsadhna22@gmail.com
21 Nov, 2020

बांद्रा

दुनिया से तो भागा जा सकता है, ख़ुद से नहीं। शाम के 4:30 बजे के आसपास की बात है। एक लड़की बांद्रा स्थित अपने अपार्टमेंट से सफ़ेद रंग की नाइटी पहने हुए निकली और बिना रुके बस बेतहाशा-सी भागी जा रही है। जिस दिशा में वह जा रही है वह रास्ता जुहू चौपाटी की तरफ़ जाता है। लड़की की हालत देखकर ऐसा लग रहा है जैसे कि कोई बहुत ही भयानक-सी चीज़ उसने देख ली हो, जिससे वह बहुत दूर चली जाना चाहती हो।

दूर कहीं टीवी पर...

अभी-अभी ख़बर आ रही है कि मशहूर अभिनेत्री मीरा अपने ही घर में मृत पाई गई हैं। उनकी मौत की वजह क्या है, यह अभी ठीक से कुछ कहा नहीं जा सकता। यह ख़बर सचमुच चौंका देने वाली है। ग़ौरतलब है कि उनकी उम्र अभी सिर्फ़ चालीस साल थी...

डूबती शाम

कई बार हम ऐसा कुछ कर जाते हैं जिसे करने के बाद हमें ख़ुद हैरानी होती है। कुछ ऐसा जो हम कब का करना छोड़ चुके होते हैं या वह हमने अपनी ज़िंदगी में कभी किया ही नहीं होता। फिर अचानक ऐसा कुछ घट जाता है जिसके बाद हम वह काम इस तरह से कर जाते हैं, मानो ये प्यास लगने पर पानी पीने जैसी आम बात हो। मैं भी यहाँ आना सालों पहले छोड़ चुकी थी। लेकिन मैं आज यहाँ ऐसे आ गई जैसे आदमी हर शाम थका-हारा लौटकर घर जाता है। मैंने कभी यहाँ दोबारा आने का सोचा नहीं था। मुंबई का ये जुहू चौपाटी और इससे लगता ये गहरा विशाल समुद्र। आज सिर्फ़ यही एक हादसा मेरे साथ नहीं हुआ। आज डूबता हुआ सूरज भी मुझे बहुत अपना-सा लग रहा है। और ये भी मेरे लिए किसी हादसे से कम नहीं। पहले मैं जब भी इसे देखती थी एक अजीब-सा ख़ालीपन मेरे मन में उतर जाता था। अजीब इसलिए कि यह ऐसा ख़ालीपन नहीं था जो किसी के न होने पर महसूस होता है। या जो हमारी किसी बहुत प्यारी चीज़ के टूट जाने पर या जो अपने घर से बहुत दिनों तक दूर रहने पर हमारे अंदर घर कर लेता है। ये ऐसा ख़ालीपन था जो तब महसूस होता है जब हमें लगता है कि हमारी ज़िंदगी में सब सही है। हम ख़ुश हैं। लेकिन आज इसे देखकर कोई ख़ालीपन नहीं, कोई उदासी नहीं और न ही कोई सवाल है मन में। आज जैसे हम दोनों ही समझ रहे हैं कि हमारा मिलना पहले से ही तय था। अक्सर सबसे ज़्यादा सुकून हमें वहीं मिलता है जहाँ से हम बहुत दूर भाग जाना चाहते हैं।

इससे दूर रहने की एक और वजह थी। मुझे कोई भी जाती हुई चीज़ अच्छी नहीं लगती थी। किसी को भी जाते हुए देखकर मेरा मन बहुत उदास हो जाता है। साथ ही एक अजीब-सी बेचैनी भी होने लगती है, क्योंकि जब भी मैं किसी को जाते हुए देखती हूँ तो मेरे मन में यही ख़याल आता कि कहीं ये हमारी आख़िरी मुलाक़ात तो नहीं? अगली मुलाक़ात से पहले मुझे कुछ हो गया तो? या फिर उसे कुछ हो गया तो? या फिर कहीं कुछ ऐसा घट गया जिसकी वजह से हम एक-दूसरे से मिलना ही न चाहें तो? या फिर हमारी अगली मुलाक़ात तक इतना वक़्त बीत चुका हो कि हम इतना बदल जाएँ कि दोबारा से शुरू करना मुमकिन ही न हो तो? हम हर पल में नये होते रहते हैं। हमारी सोच, हमारे विचार, हमारी भावनाएँ, हमारी पसंद सब वक़्त के साथ बदल जाते हैं। और ये बदलाव पलक झपकते ही नहीं हो जाता। ये प्रक्रिया हर सेकंड चालू रहती है जिसका हमें पता भी नहीं चलता। और एक दिन हम पाते हैं हम वह रहे ही नहीं जो कल थे। इस बात का पता हमें तब चलता है जब हम अपने बीते हुए कल से टकराते हैं और वह कल हमें अजनबी-सा लगने लगता है। जैसे हम उससे आज पहली बार मिल रहे हों। हमारा वर्तमान हमारे अतीत का अपग्रेड वर्ज़न ही तो है। हम चाहें भी तो अपने ओल्डसेल्फ़ में वापस नहीं जा सकते। जिस तरह मुँह से निकले हुए हमारे शब्द पराए हो जाते हैं, उसी तरह हमारा जिया हुआ कल हमारे आज से अजनबी होता जाता है। ये सब मैंने कहीं पढ़ा था। अब याद नहीं कहाँ पढ़ा था। इस बात को मैं सिर्फ़ इसलिए नहीं मानती क्योंकि इसे मैंने कहीं पढ़ा था। इस

बात का अनुभव मैंने अपनी अब तक कुल-मिलाकर गुज़ारी चालीस साल की ज़िंदगी में कई बार किया है। मेरी ज़िंदगी को छोड़कर अब तक बहुत से लोग जा चुके हैं। इसलिए मैंने लोगों को अपनी आदत ही बनाना छोड़ दिया था ताकि वो जाएँ भी तो मैं उनकी यादों में क़ैद होकर ख़ुद को न खो दूँ।

मैं किताबें बहुत पढ़ती हूँ। लेकिन मेरी कोई पसंदीदा किताब नहीं है। वैसे पसंदीदा तो मेरा कुछ भी नहीं है। मेरा ये मानना है कि जैसे ही हमें कोई या कुछ बहुत पसंद आने लगता है उसके साथ हम अनजाने ही एक अनाम-सा रिश्ता बना लेते हैं। रिश्ते चाहे जैसे भी हों, वह हमें बाँधते ही हैं। रिश्ता बनते ही हमें उस कोई या कुछ के खोने का डर सताने लगता है। ये डर हमें चैन से जीने भी नहीं देता। हमारे जीने की आज़ादी उस डर में क़ैद होकर रह जाती है। फिर धीरे-धीरे हमें उस आज़ादी की इच्छा से भी डर लगने लगता है, क्योंकि हमें अपनी पसंद से जुड़े रहने की इतनी आदत हो जाती है कि उससे अलग हम अपनी ज़िंदगी को सोच भी नहीं पाते हैं। दुनिया ऐसे ही लोगों से भरी पड़ी है। शायद रिश्ते बचे भी ऐसे ही लोगों की वजह से है। इन्हीं लोगों की वजह से शायद अब तक दुनिया में प्यार, दोस्ती, और परिवार जैसे शब्द अपना वजूद बनाए हुए हैं। वह अलग बात है उनके मायने उन्होंने अपने हिसाब से एडजस्ट कर लिए है। मेरे लिए किसी भी भावना को नाम देने का मतलब है उन्हें ख़ुद को नियंत्रण करने की पावर थाली में सजाकर दे देना। मुझे तो अपनी आज़ादी बहुत पसंद है।

मैं भी क्या सोचते-सोचते क्या ही सोचने लगी? कैसे हम कुछ सोचते-सोचते कुछ और ही सोचने लगते हैं? इसीलिए शायद अँग्रेज़ी में इस तरह के सोचने को Train of Thoughts कहा जाता है। मुझे सोचना पसंद है, ठीक वैसे ही जैसे मुझे सफ़र में रहना पसंद है। सोचना भी तो एक सफ़र जैसा ही होता है। इस सफ़र में जाने कितनी नयी सोच हमारी हमसफ़र बनती हैं, फिर उस सफ़र में ही बिछड़ भी जाती हैं और हम फिर से अपने सफ़र पर चल पड़ते हैं।

आज समुद्र कितना शांत है! बिलकुल मेरे मन के विपरीत। एक लहर भी नहीं जो किनारे के साथ छेड़खानी कर रही हो। किनारा भी कैसे बुझा-बुझा नज़र आ रहा है। हालाँकि यहाँ बहुत से लोग हैं, लेकिन किनारे को तो जैसे सिर्फ़ लहरों का ही इंतज़ार है। किनारे को भी तो लहर की आदत-सी हो गई होगी। इसीलिए मैं ख़ुद को किसी भी आदत की आदी नहीं होने देती। एक भी दिन आदत के अनुसार न गुज़रे तो मन भी बुझ जाता है। और बुझी हुई चीज़ें सिर्फ़ अँधेरा करती हैं।

मेरे यहाँ न आने की वजह मेरी इस जगह से या समुद्र से कोई नाराज़गी नहीं थी। बल्कि पूरे शहर में यही एक जगह थी जो मुझे मेरे परिवार-सा सुख देती थी। ऐसा इसलिए नहीं होता था क्योंकि यहाँ समुद्र है। मेरे लिए ये किसी भी दूसरी जगह की तरह ही है। इसके बारे में जाने कितने लेखकों ने अपनी कहानियों में, शायरों ने अपनी शायरी में और फ़िल्मकारों ने अपनी फ़िल्मों में कितना कुछ कहा है। उन्होंने इंसान की भावनाओं को इसके साथ इस तरह जोड़ा है कि वह अपनी भावनाओं को इससे अलग देख ही नहीं पाता। मैं ये नहीं कहती उन्होंने जो कुछ लिखा या दिखाया सब झूठ है। होता होगा हल्का

मन यहाँ आकर रोने से। लगती होंगी छोटी परेशानियाँ इसे देखकर। लगता होगा रूमानी यहाँ हाथ में हाथ डालकर टहलने से या लहरों के साथ खेलते हुए एक-दूसरे को छूने में। लेकिन क्या ये हम सही में महसूस करते हैं? या सिर्फ़ हमें ऐसा लगता है कि हमें ऐसा महसूस हो रहा है, क्योंकि हमने किसी फ़लानी किताब में पढ़ा था या किसी फ़लानी फ़िल्म में देखा था। या जैसे आजकल हर चीज़ रेडीमेड मिलती है वैसे ही ये सोच भी हम रेडीमेड ले आए हैं जिसे ख़ासकर हमारे लिए ही तैयार किया जाता है, ताकि हम ख़ुद कुछ सोच ही न पाएँ। और ये सिर्फ़ समुद्र के बारे में ही नहीं है। दुनिया की दुनियादारी आजकल चल ही ऐसी रही है। वह हर चीज़ हमारे आगे रेडीमेड तैयार कर देते हैं ताकि हम ख़ुद सोचना बंद कर दें और धीरे-धीरे उनकी सोच के ग़ुलाम होते जाएँ और वह हम पर राज कर सकें।

न ही मुझे समुद्र से कोई बैर है न ही मुझे लोगों के यहाँ आकर बैठने, सुस्ताने या टहलने से कोई दिक़्क़त। बस लोग कहीं भी जाए पर अपनी ही कोई वजह ढूँढ़कर जाए ताकि उन्हें उस जगह से वह मिल सके जिस वजह से वह उस जगह जाना चाहते थे।

मैं यहाँ इसलिए आती थी क्योंकि ये जगह मुझे मेरे बचपन के घर जैसा महसूस करवाती थी। वैसे तो मैं शिमला की गोद में पली-बढ़ी हूँ। पर एक बार मैं अपने माँ-बाबा और दादी के साथ मुंबई घूमने आई थी। हमने एक पूरा दिन इस जुहू चौपाटी पर हँसते-खेलते साथ गुज़ारा था। वह आख़िरी बार था जब हम चारों एक साथ ख़ुश थे। मैं जब भी इस शहर में ख़ुद को अकेला पाती थी यहाँ आ जाती। यहाँ आकर मैं कुछ देर के लिए सब कुछ भूल जाती। मुझे याद रहती तो बस वह याद जब इस जगह पर हम चारों साथ थे। हमारी वह याद भी तो इस जगह की याद्दाश्त का एक हिस्सा होगी? शायद ऐसा हिस्सा जिसे इसने यहीं अपनी इस रेत में, यहाँ चलने वाली हवा में, समुद्र के पानी में इस तरह घोला कि वह भी रेत, हवा, पानी हो गया। जितना चैन मुझे यहाँ आकर मिलता उतनी ही मेरी बेचैनी भी बढ़ने लगती थी। क्योंकि इस जगह के हाथों मैं अपने चैन और सुकून को महसूस करने की आज़ादी हार चुकी थी। यह जगह मेरे ख़ुश रहने के अधिकार को नियंत्रित करने लगी थी, जिसे सोचकर मेरा दिल टूटता था। मेरे साथ कुछ भी अच्छा या बुरा होता, मेरा मन यहाँ आने को करता। इसीलिए मैंने यहाँ आना ही बंद कर दिया था।

लेकिन हमेशा वैसा होता ही कहाँ है जैसा हम सोचते हैं! अक्सर जो हम चाहते हैं और जो होना चाहिए और जो होता है वह कभी एक-सा नहीं होता। जितना दूर हम किसी चीज़ से जाते हैं उतने ही नज़दीक हम उस चीज़ के होते हैं।

मैं इस जगह के बारे में कभी सोचना भी नहीं चाहती थी फिर भी मैं आज यहाँ पर हूँ। मेरी ज़िंदगी में आज ऐसा कुछ हुआ जिसके बाद मुझे मेरे अपनों की याद सताने लगी। मेरा मन बस यहाँ आकर रोने को कर रहा था। वैसे मेरी कोशिश यही रहती थी कि मैं किसी भी बात पर न रोऊँ। वह इसलिए क्योंकि रोना मुझे अच्छा लगता था। रोना इस दुनिया की सबसे ज़रूरी क्रिया है। रोए बिना ख़ुद को झेला नहीं जा सकता। रोना मन के अँधेरे को दीये दिखाने जैसा है। मैं नहीं चाहती थी कि मेरी एक परेशानी का हल मुझे दूसरी परेशानी बनकर मिले। रोने से मुझे अच्छा महसूस तो होता पर रोना मेरी आदत बन जाता। परंतु

आज बात अलग थी। आज मेरे अपने लिए बनाए गए सब नियम-क़ानून ने छुट्टी ले ली थी। आज मैंने ख़ुद को रोने से नहीं रोका। ये तीसरा हादसा था जो आज मेरे साथ हुआ।

क्या कोई जाती हुई चीज़ भी इतनी ख़ूबसूरत लग सकती है, आसमान की तरफ़ देखते हुए मेरे मन में यही ख़याल आ रहा है। क्या मेरा भी इस तरह दुनिया से चले जाना दुनिया को ख़ूबसूरत लगा होगा? कहते हैं डूबता सूरज तभी अच्छा लगता है जब आप उदास होते हैं। क्योंकि वह आपकी मनोदशा को प्रतिबिंबित करता है, जैसे एक प्रिज़्म सूरज की रौशनी को करता है। अगर देखा जाए डूबना और मरना एक-दूसरे के पर्यायवाची ही तो हैं। सूरज डूब जाता है। इंसान मर जाता है। आज हम दोनों की क़िस्मत एक हो गई है। दोनों को ही इस दुनिया को छोड़कर जाना है। जब दो लोगों के दुख की परछाईं दो जुड़वा बच्चों-सी दिखने लगती है तो उनके बीच किसी भी तरह के मौखिक संवाद की कोई ज़रूरत रह ही नहीं जाती है। इसलिए इसे देखते हुए मुझे ऐसा लग रहा है जैसे ये मुझसे कह रहा हो कि तुम अकेली नहीं हो। मैं तुम जैसा ही तो हूँ। और इससे मिलने वाली यही तसल्ली मुझे हिम्मत दे रही है। हिम्मत इस बात को स्वीकार करने की कि मैं अब ज़िंदा नहीं। मैं मर चुकी हूँ। ये कोई प्राकृतिक मौत नहीं थी। न ही मैं आत्महत्या कर सकती हूँ। क्या मेरा मर्डर हुआ है? अगर हाँ तो किसने किया और कैसे किया? मुझे कुछ याद नहीं आ रहा। शायद इसी सवाल का जवाब ढूँढ़ने के लिए मैं अब तक इस दुनिया और उस दुनिया के बीच एक पेंडुलम की तरह झूल रही हूँ। जब तक मैं वह जवाब ढूँढ़ नहीं लेती, मैं इस दुनिया से पूरी तरह विदा नहीं लूँगी।

मेरी मौत

पहले तो मुझे विश्वास ही नहीं हुआ कि मैं मर चुकी हूँ। मुझे ऐसा लगा जैसे मैं अभी नींद से जागी हूँ। क्योंकि जब मैं जागी तो मैं अपने बेडरूम में ही थी। बेडरूम में सब कुछ वैसा ही था जैसे रोज़ होता है। कोई भी चीज़ इधर से उधर नहीं हुई थी। कमरे के ठीक बीच में मेरा डबल बेड लगा हुआ था। बेड के दोनों तरफ़ कॉर्नर टेबल के ऊपर रखे लैंप आज नहीं जल रहे थे। हाँ बस यही एक चीज़ थी जो रोज़ की तरह नहीं थी। मैं कभी अँधेरा करके नहीं सोती थी, क्योंकि अँधेरा करते ही मुझे झटपट नींद आ जाती है। और मैं हर उस चीज़ से दूर भागती थी जो मेरी ज़िंदगी को आसान कर देती थी। चूँकि मैं हमेशा बेड के बाईं तरफ़ सोती थी इसीलिए मेरी सारी ज़रूरत की चीज़ें बाईं वाली कॉर्नर टेबल पर रखी होती थी जैसे पानी, मोबाइल, लिप बाम और कभी कोई किताब जो मैं उस वक़्त पढ़ रही होती थी। जैसे आज वहाँ पर Virginia Woolf की 'A Room Of One's Own' रखी हुई थी। बेड के पीछे वाली दीवार पर मेरा ख़ुद का बड़ा-सा पोस्टर लगा हुआ था। वह दीवार आइवरी कलर की थी। बेड के ठीक सामने वाली दीवार पर मैंने जंगल मुराल वाला वॉलपेपर इंस्टॉल करवाया था। जंगल ही ऐसी एक जगह थी जहाँ मैं आजतक नहीं गई थी। इसलिए मुझे नहीं पता था मुझे वहाँ जाकर अच्छा लगता या बुरा। इसके साथ मेरी किसी भी तरह की कोई भावनाएँ जुड़ी हुई नहीं थीं। इसीलिए मैंने जंगल वाला ही वॉलपेपर चुना। ताकि जब मैं सुबह जागूँ और मेरी नज़र इस पर पड़े तो मुझे कुछ नया जानने की उत्सुकता हो। दिन की शुरुआत कुछ नया महसूस करने की इच्छा से हो, न कि वही कुछ पुराना जिया हुआ याद करके। उसी दीवार के बीच एक घड़ी लगी हुई थी। बेड की दाईं तरफ़ वाली दीवार के पास दो बड़ी कंफ़र्टेबल सोफ़ा चेयर रखी हुई थी और बेड की बाईं तरफ़ मेरा वॉशरूम था, जिसके साथ ही मेरा ड्रेसिंग रूम भी जुड़ा हुआ था। मेरे कमरे में बालकनी नहीं थी। बालकनी वाले कमरे को मैंने अपनी स्टडी-कम-लाइब्रेरी बना दिया था। जब भी मैं घर में होती थी तो मेरा अधिकतर समय वहीं गुज़रता था। मेरा बेडरूम मेरे फ़ाइव बेडरूम लक्ज़री अपार्टमेंट का एक हिस्सा भर था। इतने बड़े अपार्टमेंट में मैं अकेले ही रहती थी, अगर हाउसकीपिंग स्टाफ़ को छोड़ दिया जाए तो। उन्हें मिलाकर हम चार लोग इस बड़े से घर में रहते थे। एक मेरा कुक था राजीव, जिसकी उम्र बीस-बाईस साल से ज़्यादा नहीं थी और वह खाना भी एक प्रोफ़ेशनल कुक की तरह नहीं बनाता था। पर ठीक वैसा ही बनाता था जैसा स्वाद मुझे चाहिए था। दूसरी थी रानी, जिसके पास घर की सफ़ाई के साथ-साथ मेरे कपड़ों की देखरेख का भी काम था। कौन-सा कपड़ा ड्राइक्लीनिंग के लिए जाना है और कौन-सा घर में ही धोना है यह सब वही देखती थी। वह भी पच्चीस से ज़्यादा नहीं होगी। तीसरी थी राज़ी, मेरी हम उम्र और मेरे सबसे क़रीब भी। हालाँकि यह बात मैंने अपने जीते जी कभी नहीं मानी थी, क्योंकि अगर मान लेती तो मुझे उसे ख़ुद से दूर करना पड़ता जो मैं करना नहीं चाहती थी। इसलिए मैं लगातार ख़ुद से झूठ बोलती रहती कि वह भी औरों की ही तरह मेरे लिए सिर्फ़ काम करती है। अब थोड़ी-सी बेईमानी की अनुमति तो

मुझे भी मिल सकती थी। आख़िर थी तो मैं इंसान ही। राज़ी ही थी जो मुझे सबसे ज़्यादा समझती थी। मुझे कब क्या चाहिए, मेरे बोलने से पहले मेरे सामने होता था। पूरे घर की देखरेख उसके हाथों में ही था।

अपने बारे में यूँ पास्ट टेंस में बात करना भी एक नया-सा ही अनुभव है। थोड़ा अजीब है लेकिन ये सोचकर ही मुझे रोमांच महसूस हो रहा है कि ये जो मैं अभी महसूस कर रही हूँ वह दुनिया का कोई भी ज़िंदा इंसान महसूस नहीं कर सकता। इसके लिए उसे मरना होगा और मरने के बाद मेरी तरह सोचना जो शायद उसके लिए मुश्किल भी हो। क्योंकि जो काम उसने जीते जी नहीं किया और जो करना उसे आता ही नहीं, वह मरने के बाद उस काम को कैसे करेगा? कितना मज़ा आ रहा है मुझे ये सब सोच के। मैं सही में बहुत दुष्ट हूँ।

जब मैं नींद से जागी तो शाम के चार बज रहे थे। रात को पार्टी से आते-आते लगभग सुबह ही हो गई थी। वैसे तो मैं ड्रिंक नहीं करती थी। शायद कल किसी ने मेरी ड्रिंक के साथ कोई छेड़छाड़ कर दी थी, जिस वजह से मैं अब तक सो रही थी। उठते ही आदतन मैं वॉशरूम की ओर जाने लगी तो पीछे से मुझे राज़ी के चीख़ने की आवाज़ सुनाई दी। मैंने मुड़कर देखा तो राज़ी बेड की तरफ़ देख रही थी। मैंने बेड की तरफ़ नज़र घुमाई तो ख़ुद को बेड पर सोता हुआ पाया। या यूँ कहूँ कि मरा हुआ पाया। मेरा पूरा बदन नीला पड़ा हुआ था। शायद मुझे ज़हर दिया गया था। राज़ी की चीख़ सुनकर राजीव और रानी भी मेरे बेडरूम में आ गए और मुझे उस हालत में देखकर उनकी भी चीख़ निकल गई। मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था, सिवाय इसके कि मुझे यहाँ से किसी ऐसी जगह पर जाना है जहाँ मुझे घर जैसा सुकून मिले। और मैं वहाँ से भागकर यहाँ आ गई। अब तक तो पुलिस भी वहाँ पहुँच गई होगी। मेरी बॉडी को पोस्टमार्टम के लिए भी भेज दिया होगा। पुलिस के शक के घेरे में सबसे पहले राजीव, रानी और राज़ी ही होंगे। ऐसे एलीट मर्डर के मामलों में घर के नौकर ही सबसे पहले शक के घेरे में लिए जाते हैं।

कुछ ही देर में शाम के अख़बारों में मेरे मरने की ख़बर सनसनी मचाने ही वाली होगी। टीवी पर तो सब न्यूज़ चैनल अब तक ब्रेकिंग न्यूज़ के साथ ये न्यूज़ ब्रेक भी कर चुके होंगे। सोशल मीडिया पर शोक भरे संदेशों की बाढ़ आ गई होगी। राजनीति और फ़िल्म जगत की तमाम हस्तियों ने भी इस ख़बर के साथ अपना स्टेटस अपडेट करके अपनी ज़िम्मेदारी निभा ली होगी। आख़िर मर्डर हुआ भी तो एक मशहूर पूर्व फ़िल्म अभिनेत्री का था, जिसने बॉलीवुड को अपने पंद्रह साल के करियर में कई शानदार फ़िल्में दी थीं। और जो अब फ़िल्मों में अपनी क़िस्मत आज़माने के बाद पॉलिटिक्स की दुनिया में क़दम रखने जा रही थी। जीते जी तो मैंने कभी मीडिया को मुँह नहीं लगाया था, पर अब इन्हें कौन रोकने वाला था! अब ये क्वेश्चन मार्क के साथ मेरे बारे में कुछ भी बकवास कहेंगे, कुछ भी अनाप-शनाप लिखेंगे, क्योंकि इन्हें पता है अब इनके ख़िलाफ़ कोई कार्यवाही करने वाला नहीं है। असली पोस्टमार्टम तो आदमी का ये मीडिया ही करती है। और जो थोड़ा-सा मशहूर हो उसे तो ये पोस्टमार्टम करने के बाद भी नहीं छोड़ती।

अब कुछ दिन तक हर किसी की ज़ुबान पर सिर्फ़ मीरा का ही नाम रहने वाला है। जिसकी ज़िंदगी का सफ़र 7 जून 1979 को शिमला में शुरू हुआ था और 28 जुलाई 2019

को मुंबई में ख़त्म हो गया।

नामकरण

जब भी कहीं मैं अपना पूरा नाम मीरा सहगल लिखा देखती थी तो मुझे ऐसे लगता था यह किसी एक बंदे का नाम नहीं है बल्कि दो लोगों का नाम है। वो भी दो ऐसे लोग जिनको ज़बरदस्ती एक साथ इसलिए रखा गया ताकि उन दोनों के बीच उनका रिश्ता साबित हो सके। एक लड़की के लिए उसका पहला नाम ही उसकी पहचान होती है। क्योंकि उसके लिए उसके बाप का दिया सरनेम तब तक ही रहता है जब तक उसकी शादी नहीं हो जाती। शादी के बाद पति का सरनेम उसके नाम के साथ जुड़ जाता है। जैसे लड़की न हुई कोई संपत्ति हो गई। बाप ने पैदा किया अपना नाम दे दिया। पति ने पत्नी बनाया तो उसने अपना नाम दे दिया। जब मैंने होश संभाला और चीज़ों को समझना शुरू किया, तब मेरे मन में यह सवाल बार-बार उठता था कि सिर्फ़ एक लड़की ही अपना सरनेम क्यों बदले। या फिर कोई भी क्यों बदले। ज़रूरत क्या है इसकी। और ये सिर्फ़ हमारे देश में ही नहीं पूरी दुनिया में होता आया है। कुछ लड़कियाँ जो अपने सोच-विचार रखने के लिए आज़ाद हो जाती हैं और जिन्हें फ़ेमिनिज़्म का थोड़ा-सा मतलब समझ आने लगता है वह लड़कों को इसका जवाब अपने पति के साथ-साथ अपने बाप का सरनेम भी अपने नाम के साथ लगाकर देती हैं। पर ऐसा करते हुए वह भूल जाती हैं कि अब उनका नाम देखकर ऐसा लग रहा होता है जैसे अब वह एक नहीं दो लोगों की संपत्ति है। और जो लड़कियाँ थोड़ा और ज़्यादा मतलब समझने लगती है वह बाप और पति की पहचान छोड़कर अपनी माँ का पहला नाम अपने नाम के साथ लगाने लगती हैं। मेरा पूछना है कि किसी का भी नाम अपने नाम के साथ जोड़ना ही क्यों? क्या उसके बिना तुम अपने बाप की बेटी नहीं रहोगी या अपनी पति की पत्नी? या अपनी माँ की बेटी? या तो किसी सरनेम का प्रयोग ही मत करो या फिर कोई भी कर लो क्या फ़र्क़ पड़ता है!

मैं ख़ुद को कभी फ़ेमिनिस्ट नहीं कहती थी। मुझे ख़ुद का किसी भी तरह से वर्गीकरण करना पसंद नहीं था। किसी लड़ाई के एक बड़े समूह का मुद्दा बनते ही उसे लड़ने वालों के बीच गुटबाज़ी होना शुरू हो जाती है। फिर बस यही रह जाता है कि तेरी लड़ाई मेरी लड़ाई से सफ़ेद कैसे? हर औरत की स्थिति एक जैसी नहीं होती। हर स्तर की औरत के लिए नारीवाद की परिभाषा भी अलग हो जाती है। किसी एक मुद्दे की जितनी परिभाषाएँ होती हैं उतना ही रायता फैलता है। और फिर ख़ुद औरतों के बीच में ही एक तरीक़े का गृहयुद्ध शुरू हो जाता है। जब तक औरतें आपस का भेदभाव नहीं मिटाएँगी तब तक वे ये लड़ाई नहीं जीत सकतीं। अपनी इच्छा से जीने की आज़ादी और आत्मनिर्भरता उनका हक़ है और लड़ाई भी इसी हक़ के लिए होनी चाहिए। मगर होता ये है कि या तो वह आपस में लड़ती रहती हैं या फिर मर्दों से बराबरी में लग जाती हैं। फिर लड़ते-लड़ते मर्दों की बराबरी करने के चक्कर में उनके जैसी ही बन जाती हैं। उन्हें यह याद रखना चाहिए कि उनकी यह लड़ाई मर्दों से आगे निकलने की नहीं बल्कि ख़ुद को आगे बढ़ाने के लिए है। उन्हें अपना प्राकृतिक स्वभाव भूले बिना अपना हक़ लेना चाहिए। ज़रूरी नहीं जो-जो मर्द करते हों

वही पसंद उनकी भी हो। नारीवाद में पुरुषवाद का घुल जाना एक समय के बाद उनके के लिए ज़हर ही साबित होगा।

मैं हमेशा से अपने नाम को लेकर बड़ी ही भावुक थी। बचपन में जब भी कोई मेरा नाम पूछता था तो मैं बड़ी शान से सिर्फ़ अपना पहला नाम बताती थी। जबकि तब तक तो मुझे इस पहले और आख़िरी नाम के बीच का अंतर भी नहीं पता था। और जब भी मुझे कोई पूरा नाम बताने को कहता था तो मैं कहती बाबा से पूछ लो या माँ से पूछ लो। मैं उन्हें सिर्फ़ अपना नाम 'मीठी' ही बताती थी। मेरा नाम हमेशा से मीरा नहीं था। लेकिन मैंने अपनी पहली फ़िल्म साइन करने से पहले अपना नाम बदल दिया था। मैंने कभी फ़िल्मों में आने का नहीं सोचा था। ये मेरा सपना नहीं था। कुछ ऐसा हुआ कि अनचाहे ही मेरी राहें बॉलीवुड की ओर मुड़ गईं। और फिर मैंने अपना नाम बदलने का सोचा। क्योंकि मुझे अपने जन्म के नाम से बहुत प्यार था और मैं उस नाम से कभी उस काम के लिए नहीं जानी जाना चाहती थी, जो काम मैं कभी करना ही नहीं चाहती थी। और इस तरह मीरा नाम फ़िल्मों में मेरी पहचान बना बिना किसी सरनेम के। लोग मधुबाला की तरह ही मुझे भी सिर्फ़ मीरा कहके बुलाते थे। मैं ये तो नहीं कहती कि मैं उनकी तरह ही एक बहुत अच्छी अभिनेत्री थी। पर मुझे एक कलाकार के रूप में लोगों का प्यार उनसे कम भी नहीं मिला था।

वैसे मीरा नाम चुनने के पीछे भी एक बड़ा ही दिलचस्प क़िस्सा है। हुआ यूँ कि एक दिन मैं ड्राइव करके कहीं जा रही थी और मेरे दिमाग़ में यही चल रहा था अपना कौन-सा नाम रखा जाए। तभी रेड लाइट हो गई और एक छोटी-सी बच्ची जो आठ नौ साल की रही होगी, उसने मेरी कार की खिड़की पर दस्तक दी। उसके हाथ में कुछ फ़िल्मी पत्रिकाएँ थी। मैंने जैसे ही उससे बात करने के लिए कार की खिड़की का शीशा नीचे किया, तभी उसकी माँ ने उसे मीरा कहकर पीछे से आवाज़ लगाई। बस उसी पल मैंने सोच लिया था कि मेरा नाम अब सिर्फ़ मीरा होगा और कुछ नहीं। क्योंकि मीरा का पहला अक्षर मेरे असली नाम मीठी वाला ही था। और इस तरह मीरा में आधी मीठी हमेशा ज़िंदा रहेगी। दूसरा, मुझे यह मात्र संयोग महसूस नहीं हुआ था कि जब मैं अपने नाम के बारे में सोच रही थी तभी एक लड़की आती है, मुझे कुछ और नहीं सिर्फ़ फ़िल्मी पत्रिकाएँ बेचने की कोशिश करती है और फिर उसकी माँ उसे पीछे से उसके नाम से बुलाती है। यह मुझे एक इशारा लगा था। फिर मैंने उस दिन उस बच्ची से उसकी अनुमति के बिना उसका नाम शेयर करने के बदले उसकी सारी पत्रिकाएँ दुगने दामों पर ख़रीद ली और साथ ही अपनी हाथ की घड़ी भी उतारकर उसे दे दी। दुनिया में कुछ भी मुफ़्त नहीं मिलता। इसलिए हम जब किसी से कुछ लें तो बदले में उन्हें भी कुछ ज़रूर दे देना चाहिए। नहीं तो आगे जाकर पता नहीं कितनी बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ जाए। वह बच्ची मीरा घड़ी लेकर बहुत ख़ुश हो गई थी और उसने मुझे लाखों दुआएँ भी दी थीं। पगली ये भी नहीं जानती थी कि जो उसने मुझे दिया है उसके बदले ये तो कुछ भी नहीं था। बाद में ड्राइव करते हुए मैं यही सोच रही थी कि अब जब कभी वह बच्ची मुझे बड़े पर्दे पर देखेगी या फिर किसी फ़िल्मी पत्रिका में और तब उसे पता चलेगा कि इसका नाम भी मीरा है, तो चाहे कुछ पल के लिए ही सही वह ख़ुश तो होगी कि मेरे नाम की इतनी बड़ी हीरोइन है। पता नहीं उसे तब तक मेरा चेहरा याद भी रहेगा या

नहीं? कभी-कभी मुझे ये सोचकर गिल्ट भी होता कि मैंने उसे क्यों नहीं बताया कि मैं उसका नाम शेयर करने वाली हूँ? शायद इस बात से उसे फ़र्क़ भी नहीं पड़ता। अगर पड़ता तो बस इतना कि वह जब भी मुझे देखती तो यही सोचती कि मैंने इसे अपना नाम दिया था। और मुझे यही सोचकर एक बोझ-सा महसूस होता रहता कि उसे पता है मैंने उसका नाम लिया है। फिर हम दोनों ही एक-दूसरे की सोच में लेनदार-देनदार वाला रिश्ता सारी ज़िंदगी निभाते रहते। कभी-कभी जो होता है वह अच्छा ही होता है।

बाद में मैं जब भी उस रास्ते से गुज़रती, मेरी नज़र उसे ढूँढ़ने लगती। लेकिन वह मुझे फिर कभी दिखाई नहीं दी।

अविनाश लूथरा

चौपाटी पर अचानक शोर बढ़ गया। सूरज भी पूरी तरह डूब चुका है। बस इतनी ही रौशनी बाक़ी है जितनी पूरी तरह अँधेरा होने से पहले होती है। लोग जान गए हैं मैं मर चुकी हूँ। कुछ लोग अख़बार में ख़बर पढ़ रहे हैं, तो कुछ सोशल मीडिया पर। कोई फ़ोन पर अपने किसी जानने वाले से मीरा की अचानक हुई मौत पर हैरानी जता रहा है। एक पानी-पूरी वाले ने तो मीरा की फ़िल्मों के गाने ही अपने मोबाइल पर लगा दिए। एक जवान जोड़ा तो इसी बात पर बहस रहा है कि मीरा की सबसे अच्छी फ़िल्म कौन-सी थी। दो-चार लोग तो अपने घर की तरफ़ लौट भी चुके हैं ताकि घर जाकर टीवी पर आराम से डिटेल में पता कर सकें कि आख़िर सच क्या है। जो बचे हैं वह आपस में बस इसी विचार-विमर्श में लगे हैं कि मीरा को किसने मारा। कुछ लोगों का मानना है कि शायद विपक्षी पार्टी ने मरवा दिया होगा। उन्हें डर होगा कि मीरा इतनी मशहूर है कि वह मेजौरिटी में वोट ले जा सकती थी। तो कुछ लोग कह रहे हैं कि घर के नौकरों ने ही मरवा दिया होगा। और कुछ लोग इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि मीरा आत्महत्या भी तो कर सकती है। ये सब देखकर मेरा मन फिर से रोने को कर रहा है।

अपने पंद्रह साल के फ़िल्मी करियर में मैंने बहुत से दुश्मन बनाए, लेकिन उस दुश्मनी की हद मर्डर नहीं हो सकती। वहाँ बदले की संभावना ज़रूर हो सकती थी, पर मर्डर की कहानी नहीं। वो दुश्मनी एक प्रोफ़ेशनल ईर्ष्या से ज़्यादा कुछ भी नहीं थी। बस मुझे एक ही बात की चिंता है कि अगर पुलिस को भी यही लगा कि मैंने आत्महत्या की तो क्या होगा? उनके ऐसा सोचने के पीछे एक ठोस वजह भी होगी। पिछली रात मैं जब पार्टी से लौटी तो मैं अकेली थी। मेरा ड्राइवर मुझे पार्किंग में छोड़कर घर चला गया था। जबसे मैंने फ़िल्मों से रिटायरमेंट ली थी तबसे मैंने बॉडीगार्ड रखना छोड़ दिया था। मेरे पार्किंग से अपने अपार्टमेंट पहुँचने तक की सीसीटीवी फ़ुटेज पुलिस को मिल जाएगी और इस बात का सबूत भी कि मैं अपने घर के अंदर दाख़िल होने तक सही सलामत थी। घर के अंदर भी उन्हें ऐसे कोई सबूत नहीं मिलेंगे जिससे उन्हें लगे कि किसी भी तरह की कोई ज़बरदस्ती वहाँ हुई हो। जब मैंने ख़ुद को आख़िरी बार देखा था तब मुझे मेरा शरीर नीला पड़ा हुआ तो नज़र आ रहा था लेकिन उस पर किसी भी तरह के कोई चोट के निशान नहीं थे। राज़ी, रानी और राजीव से पूछताछ करने के बाद पुलिस को उन्हें छोड़ना ही पड़ेगा क्योंकि उनके पास मुझे मारने की कोई बोलती वजह ही नहीं थी। वह तीनों मेरे साथ काफ़ी समय से थे। वो सब आज़ाद थे अपना काम अपने हिसाब से करने के लिए। मेरी किसी भी तरह की कोई दख़लअंदाज़ी नहीं थी। न ही मैं कभी उन पर किसी बात को लेकर चिल्लाती या ग़ुस्सा होती थी। वो मेरे लिए काम करके ख़ुश थे। और ऐसा भी नहीं था कि मुझे मारने के बाद उन्हें कोई फ़ायदा होता। हाँ एक शख़्स है जिस पर पुलिस का शक जा सकता है।

ये बात 2005 की है। मुझे फ़िल्मों में आए लगभग चार साल हो चुके थे। मेरी तब तक दस फ़िल्में आ चुकी थीं। जिसमें से पाँच बड़ी हिट थी और पाँच ने ठीकठाक बिज़नेस कर लिया

था। एक दिन मुझे अविनाश लूथरा का फ़ोन आया। वह मुझसे एक मीटिंग करना चाहता था। उसका ख़ुद का एक प्रोडक्शन हाउस था। उसकी कंपनी ने पिछले कुछ सालों में कई अच्छी फ़िल्में बॉलीवुड को दी थीं। इससे पहले हमारी मुलाक़ात एक दो बार अवॉर्ड फ़ंक्शंस में ही हुई थी। उस वक़्त उसकी उम्र चालीस के आस-पास की रही होगी। देखने में वह ताल फ़िल्म वाले अक्षय खन्ना जैसा लगता था। ऐसे तो बॉलीवुड में उसकी बहुत इज़्ज़त थी लेकिन पता नहीं ये अफ़वाह थी या सच मगर ये अक्सर सुनने में आता कि ख़ूबसूरत लड़कियाँ उसकी कमज़ोरी थीं। ख़ैर, तय समय पर मैं अपने मैनेजर के साथ उससे मिलने पहुँची। एक बड़ी-सी बिल्डिंग में एक पूरे फ़्लोर पर उसका ऑफ़िस था। उसने अपनी सेक्रेटरी से मेरे मैनेजर को बाहर बैठने को कहकर सिर्फ़ मुझे अंदर आने को कहा। अक्टूबर का महीना था। दो दिन बाद दीवाली थी। उसी दिन दिल्ली में तीन आतंकवादी हमले हुए थे। इस ख़बर की वजह से मेरा मन पहले से ही दुखी और हमलावरों के लिए ग़ुस्से से भरा हुआ था। उसके केबिन के बाहर एक पंद्रह-सोलह साल का लड़का बैठा था। मुझे देखते ही वह खिल उठा और बोला वह मेरा बहुत बड़ा वाला फ़ैन है। मैंने उसकी तरफ़ मुस्कुराकर देखा और अंदर चली गई। मुझे देखते ही अविनाश अपनी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया। उसका ऑफ़िस उस वक़्त के हिसाब से काफ़ी मॉडर्न और वेल-ऑर्गनाइज़्ड था। उसके ऑफ़िस के इंटीरियर के हिसाब से जो एक चीज़ वहाँ फ़िट नहीं हो रही थी वह थी सारे हिंदू देवी-देवताओं की तस्वीरें, जो एक कोने में एक टेबल पर सजी हुई थीं। वैसे मुझे किसी के आस्तिक होने से कोई दिक़्क़त नहीं थी, लेकिन वह अपने बड़े से ऑफ़िस में उनको एक अलग से जगह दे सकता था। ख़ैर, मिलने की सब औपचारिकताएँ निभाने के बाद मेरी नज़र टीवी पर पड़ी। वह शायद मेरे आने से पहले दिल्ली में हुए सीरियल ब्लास्ट की ख़बरें ही देख रहा था। मेरा ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए वह बोला, "मेरा बस चले तो मैं इन आतंकवादियों को एक लाइन में खड़ा करके गोली मार दूँ।"

"अच्छा है, इंसान का सब बातों पर ज़ोर नहीं चलता। आतंकवादी मरते न मरते मगर अब तक हमें ज़रूर कोई मार चुका होता।"

"तुम्हारे सेंस ऑफ़ ह्यूमर के चर्चे तो सुने थे, आज देख भी लिया।" हँसते हुए उसने मेरे आगे पानी का गिलास बढ़ाया।

दो मिनट चुप रहने के बाद वह काम की बातों पर आ गया जिसके लिए उसने मुझे बुलाया था।

"मुझे तुम्हारा काम अच्छा लगता है। मेरी कंपनी चाहती है कि हम तुम्हें दो साल के लिए कॉन्ट्रैक्ट पर साइन कर लें। तुम क्या सोचती हो इस बारे में?"

ये कहकर वह अपनी जगह से उठकर मेरे पास आया और टेबल से सटकर खड़ा हो गया। मैंने उसे इस बारे में अपने मैनेजर से बात करने को कहा। इस पर उसने मेरे हाथ पर अपना हाथ रखकर कहा कि पहले बात हमारे बीच तो हो जाए। मैंने उसके कमरे में लगे सीसीटीवी कैमरे की तरफ़ देखा। जिसे देखकर उसने मुझसे कहा कि आज इस कमरे के सारे कैमरे उसने बंद करवा दिए हैं। उसके और मेरे बीच आज यहाँ क्या बात होगी इसका

किसी को पता नहीं चलेगा। तभी वह लड़का अंदर दो कप कॉफ़ी लेकर आया। जिसे देखकर अविनाश ने अपना हाथ हटा लिया और उसे घूरकर देखा। उस लड़के ने मुझे देखा और बाहर चला गया। उसके जाने के बाद अविनाश ने फिर अपनी बात शुरू की।

"तुम मुझे अच्छी लगती हो। अगर हम दोनों एक-दूसरे की ज़रूरतों को समझें तो तुम्हें कभी काम की कमी नहीं होगी।"

मैंने उससे उसकी ज़रूरत पूछी। उसने बिना किसी शर्म के मुझे उसके साथ एक महीने के लिए किसी आईलैंड पर छुट्टियाँ मनाने के लिए कहा। साथ ही ये भी साफ़ कर दिया कि ये सिर्फ़ एक बार होगा पर मुझसे उसकी कंपनी दो साल का कॉन्ट्रैक्ट साइन करेगी, जिसके अनुसार मेरी फ़िल्म चले-ना-चले वह मुझे दो साल तक उसके बैनर तले बनने वाली हर फ़िल्म में मुख्य किरदार देगी। मैंने ये सुनकर कोई जवाब नहीं दिया। मेरी नज़र टीवी पर मरे और घायल हुए लोगों की तस्वीरों पर टिक गई। तभी उसकी सेक्रेटरी ने इंटरकॉम पर संदीप मित्तल के आने की सूचना दी। संदीप मित्तल एक जाना-माना फ़िल्म पत्रकार और आलोचक है। उसने अपनी सेक्रेटरी को उसे मीटिंग रूम में बैठाने के लिए कहा। उसने मेरा ध्यान फिर से टीवी में देखकर टीवी बंद कर दिया।

"तुम चाहो तो ना कर सकती हो। पर इस ना को मैं कैसे लूँगा, ये मैं भी नहीं जानता।"

उसकी बातों में एक चेतावनी थी। इसके बाद मेरा वहाँ दम घुटने लगा। उसने जैसे ही मेरे हाथ पर दोबारा अपना हाथ रखा मैंने उसका हाथ दूर झटक दिया। फिर उसकी टेबल पर रखा सामान तितर-बितर कर दिया। उसे समझ ही नहीं आ रहा था कि मुझे क्या हो गया है। फिर उसी के दिए पानी के गिलास का पानी उसके मुँह पर फेंकने के बाद ज़ोर से गिलास को ज़मीन पर पटक दिया। अपने बाल बिखराकर लिपस्टिक फैला दी। फिर मदद के लिए चिल्लाने लगी। अविनाश ने मुझे पकड़कर रोकने की कोशिश की जो मैंने उसे करने दी। तभी कमरे का दरवाज़ा खुला और वह लड़का, मेरा मैनेजर और संदीप मित्तल तीनों अंदर आ गए। शायद उन्होंने गिलास टूटने के आवाज़ और मेरी चीख़ सुन ली थी, ठीक जैसा मैंने सोचा था। सबको अंदर आते देखकर मैंने उसे ज़ोर से धक्का देकर ख़ुद से दूर किया। वह सबको देखकर डर गया और अपनी सफ़ाई देने लगा। मैं रोते हुए वहाँ से बाहर भाग गई। उसके बाद मेरे वकील ने उसके ख़िलाफ़ पुलिस स्टेशन में FIR दर्ज करवा दी। जब मैंने शिकायत दर्ज कराई थी तब मुझे नहीं पता था यह केस इतना बड़ा रूप ले लेगा। मैं बस उसे सबक़ सिखाना चाहती थी। मैं चाहती थी वह यह बात समझ जाए कि वह जिसे चाहे उसे नहीं पा सकता। संदीप मित्तल ने भी अपने कॉलम में इस घटना के बारे में लिखा था-

अविनाश लूथरा जैसे लोग इस फ़िल्म इंडस्ट्री के साथ-साथ इस दुनिया के लिए भी पैरासाइट जैसे ही हैं। इन्हीं लोगों की वजह से आज भी आम आदमी अपनी लड़कियों को फ़िल्मों में आने से रोकता है। आज मीरा ने इस पैरासाइट के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाकर उन सभी को प्रेरणा दी है जो ज़ुल्म को चुपचाप सहते रहते हैं। आज इस दुनिया को मीरा जैसे लोगों की ही ज़रूरत है। आप आवाज़ नहीं उठाएँगे तो कोई आपकी मदद को आगे कैसे आएगा? मुझे मीरा पर गर्व है। उम्मीद है वह जैसी हैं वैसी ही रहें। अभी तो सिर्फ़ आगाज़

हुआ है। अंजाम तक पहुँचने तक बहुत ही सब्र और साहस की ज़रूरत होगी। आशा है वह इसे लड़ाई को बीच में नहीं छोड़ेंगी।

अविनाश लूथरा के पकड़े जाने की ख़बर से पूरे बॉलीवुड में खलबली मच गई थी। कुछ लोगों को लगता था मैंने अविनाश पर झूठा आरोप लगाया है। जो लड़कियाँ अब तक अविनाश के डर से चुप बैठी थीं वे भी सामने आ गईं। उस लड़के ने भी, जो उसके यहाँ काम करता था, अविनाश के ख़िलाफ़ पुलिस को अपना बयान दिया। इसके बाद अविनाश पर लड़कियों को फ़िल्म में काम देने का झाँसा देकर उनसे शारीरिक संबंध बनाने और कई बार उनकी मर्ज़ी के बिना उनके साथ ज़बरदस्ती और बलात्कार करने जैसे संगीन आरोप लगे। उस पर अदालत में कार्यवाही शुरू हो गई। बाद में सामने आया कि उसकी और भी कई ग़ैर क़ानूनी गतिविधियों में साझेदारी थी। जैसे वह विदेशों से महँगे ड्रग्स मँगवाता और यहाँ भारत में बेचता था। वह एक डिस्को बार भी चलाता था जहाँ वह अपने क्लाइंट्स को एस्कॉर्ट की सर्विस भी दिया करता था। एक लड़की को जान से मरवाने का शक भी उस पर था। लगभग तीन साल अदालत में केस चलने के बाद उस पर ये सभी आरोप IPC की धारा 375, 376, 307 और एक्ट NDPS के अंतर्गत साबित हो गए। और उसे भारी जुर्माने के साथ ग्यारह साल की सज़ा हुई थी। संदीप मित्तल भी अपने कॉलम के द्वारा लोगों को इस केस की हर एक अपडेट देता रहा। उसके लिखने से ये केस और मज़बूत बन गया था। लोग उसकी बातों पर विश्वास करते थे। इस बीच मुझे और संदीप को जान से मार डालने की धमकियाँ भी मिलती रहीं। जिस दिन भी इस केस की सुनवाई होती लोग झुंड में कोर्ट के बाहर इकट्ठा होकर बस 'वी वांट जस्टिस' के नारे लगाते। इन्हीं लोगों की वजह से सिस्टम पर एक प्रेशर बन गया था, जिससे इतनी जल्दी फ़ैसला आने में काफ़ी मदद मिली थी।

केस ख़त्म हो जाने के बाद मैंने संदीप मित्तल को एक फूलों का गुलदस्ता शुक्रिया के तौर पर भिजवा दिया था।

अविनाश पर चाहे वह सब आरोप सही साबित हो गए हों परंतु मैंने जो तरीक़ा उस दिन अपनाया था वह ठीक नहीं था। उसे किसी भी तरह जस्टिफ़ाई नहीं किया जा सकता है। न ही मैं ये चाहूँगी की कोई मुझसे प्रेरणा लेकर कभी ऐसा काम करे। ज़रूरी नहीं जिस काम में मैं सफल रही उस काम में आप भी सफल रहें। हर इंसान की एक सीमा होती है। सीमा ख़तरा उठाने की। सीमा शीघ्र निर्णय लेने की। सीमा परिस्थितियों के अनुसार तुरंत प्रतिक्रिया करने की। मैं अपनी सीमा जानती थी इसीलिए मैंने वह क़दम उठाया। ग़लत के ख़िलाफ़ आवाज़ ऊँची कीजिए लेकिन अपनी ताक़त की सीमा पहचानने के बाद। सोचिए, समझिए फिर बोलिए।

जिस दिन लोगों को मेरे इस झूठ का पता चलेगा, लोग कभी मेरे इस तरीक़े को स्वीकार नहीं करेंगे। लेकिन वह सब करने का अफ़सोस मुझे आज तक नहीं है। मैंने उसे उसी जुर्म की सज़ा दिलाई थी, जो वह मेरे साथ करना चाहता था और जिसे पहले भी वह कई लड़कियों के साथ कर चुका था। कभी-कभी बुराई से उसी भाषा में बात करनी पड़ती है

जिसे वह समझती है। और जो कर सकते हैं वह भी अगर चुप रहें तो यही बुराई हमारे सिर पर तांडव करने लगती है।

हत्या या आत्महत्या?

अविनाश जेल जाने से पहले मुझे खुलेआम धमकाकर गया था कि वह बाहर आने के बाद मुझे मार देगा। वह अभी कुछ दिन पहले ही जेल से रिहा हुआ था। अगर उसने ही मुझे मारा है तो वह घर में घुसा कैसे होगा? या ऐसा भी हो सकता है कि मुझे ज़हर घर वापस आने से पहले दिया गया हो। और वह ज़हर अपना असर देने के कुछ घंटों बाद दिखाता हो। लेकिन पुलिस को अगर तफ़्तीश करने के बाद भी ठोस सबूत नहीं मिले तो वह ये मामला यही कहकर बंद कर देगी कि ये एक आत्महत्या का मामला था। दिव्या भारती तो याद होगी ना आपको? कैसे उसकी मौत अपने अपार्टमेंट की खिड़की से गिर जाने से हुई थी। अब वह आत्महत्या थी या मर्डर, ये आज तक मिस्ट्री ही बनी हुई है। वैसे आधिकारिक तौर पर इसे आत्महत्या का मामला मानकर बंद कर दिया गया था। उस समय मैं तेरह साल की थी। यह मुझे सही से इसलिए याद है क्योंकि उस दिन मुझे पहली बार पीरियड्स आए थे और रेशमा उस दिन फूट-फूटकर रोई थी। रेशमा मेरे पड़ोस में रहा करती थी। कुछ दिनों तक तो उसने ठीक से खाना भी नहीं खाया था। दिव्या भारती उसकी पसंदीदा हीरोइन थी। उसका वह गाना 'सात समंदर पार', उस पर रेशमा ने जाने कितनी बार मोहल्ले या उसके अपने घर में होने वाले पार्टी फ़ंक्शन में डांस किया था। आज भी जब मैं उस गाने को सुनती हूँ तो मुझे दिव्या भारती नहीं रेशमा का चेहरा याद आता है। उस दिन मैं सारा दिन टीवी के सामने बैठी थी। तब हमारे घर में केबल नहीं था। और इंटरनेट तो उसके बहुत सालों बाद चलन में आया था। तब टीवी पर दूरदर्शन के सिर्फ़ दो ही चैनल आते थे। आज के हिसाब से तब इतनी सहूलियत नहीं थी कि कभी भी कोई गाना या फ़िल्म देख सुन लो। इसलिए मैं उस दिन पूरा समय ख़बरें देखती रही क्योंकि वो लोग दिव्या भारती की मौत की ख़बर के साथ उसकी फ़िल्म का वह गाना 'ऐसी दीवानगी' भी चला रहे थे। उस वक़्त मुझे उस गाने के डांस स्टेप्स देखना और उनको कॉपी करना अच्छा लगता था। तब मेरे मन में दिव्या भारती के लिए कोई भी भावनाएँ नहीं थे। मुझे लगता था मरना कोई निस्तब्ध या जड़ कर देने वाली घटना नहीं है। पिछले साल मेरे बाबा चले गए थे। अभी कुछ दिन पहले छोटे बाज़ार में पान की दुकान चलाने वाला शंभू पनवाड़ी चल बसा था। अख़बारों में भी रोज़ किसी-न-किसी के मरने की ख़बर होती है। कभी बॉर्डर पर जवान मर जाते हैं। कभी कोई बस खाई में गिर जाती है। तो कभी कोई प्लेन क्रैश हो जाता है। कोई लंबी बीमारी से मर जाता है तो किसी को अकस्मात ही दिल का दौरा पड़ जाता है। अगर हम किसी के साथ कोई याद साझा नहीं करते हैं तो उनके मरने का ग़म भी हमें नहीं हो सकता। लेकिन आज मुझे दिव्या भारती के साथ हमदर्दी हो रही है। आज मुझे समझ आ रहा है मरना भले ही एक आम घटना हो, पर जो मरता है उसके लिए ये कोई आम बात नहीं होती। इस तरह मुझे कभी दिव्या भारती याद आएगी मैंने कभी नहीं सोचा था। क्या कोई मुझे आज से तक़रीबन बीस-पच्चीस साल बाद इस तरह याद रखेगा? क्या कोई रेशमा कभी मेरे लिए रोएगी?

शाम गहरी होती-होती रात में बदल गई है। चाँद की चाँदनी ने शाम के लाल रंग को अपने सफ़ेद रंग में रंग लिया है। तारे चाँद के सामने ज़ीरो वॉट के बल्ब की तरह टिमटिमाकर उसकी ज़िम्मेदारी को बाँटने की निरर्थक कोशिश कर रहे हैं। समुद्र भी चाँद की चाँदनी में सफ़ेद कपड़ों में सजी कोई दिलरुबा नज़र आ रहा है। लहरों का शोर भी शुरू हो गया है। वह शायद इसलिए कि अब थोड़ी हवा चलने लगी है। चौपाटी लगभग ख़ाली हो गई है। आख़िरी बार जब मैं यहाँ आई थी तो ऐसे ही पूरी रात मैंने यहाँ पर गुज़ारी थी। हीरोइन बनने के बाद मैं यहाँ अक्सर रात को ही आती थी। ये कोई आज से दस साल पहले की बात थी। उस दिन मेरी एक फ़िल्म रिलीज़ हुई थी। वह एक रोमांटिक थ्रिलर था। उसी दिन आमिर ख़ान की '3 इडियट्स' भी रिलीज़ हुई थी। मुझे मेरी इस फ़िल्म से बहुत उम्मीदें थीं। इस फ़िल्म का आधे से ज़्यादा हिस्सा यूरोप में फ़िल्माया गया था। इस फ़िल्म में मेरे साथ वही हीरो था जिसके साथ मेरी जोड़ी लोग बहुत पसंद करते थे। जिसके साथ मेरी तब तक की सारी फ़िल्में सुपरहिट रही थीं। उसका नाम था आदित्य महाजन। जो दिखने में बिलकुल जॉन अब्राहम जैसा था। ऑन स्क्रीन हमारी जोड़ी जितनी हिट थी ऑफ़ स्क्रीन उतनी ही फ़्लॉप। हम दोनों में कभी बनती ही नहीं थी। हम दोनों जब भी बात करते बहस करना शुरू कर देते थे। हमारे विचार किसी भी एक बात पर नहीं मिलते थे। लोग हमें एक साथ देखना पसंद करते थे। इसलिए भी हमारा एक साथ काम करना ज़रूरी था, फिर एक दिन हम दोनों ने अपनी ही बहस से तंग आकर ये निर्णय लिया कि हमारे बीच सिर्फ़ प्रोफ़ेशनल रिश्ता होगा। जिसे हम दोनों ने ही बड़ी ईमानदारी से निभाया। इसी वजह से हम दोनों के दिल में एक-दूसरे के लिए आदर भी बढ़ गया था।

उस दिन मैं उदास थी। हमारी फ़िल्म दर्शकों ने पहले ही दिन नकार दी थी। जिस वजह से मैं अंदर तक टूट-सी गई थी। मैं लगभग आधी रात के समय यहाँ आई थी। तब मेरा बॉडीगार्ड हर वक़्त मेरे साथ रहता था। यहाँ आते ही मेरी आँख लग गई और मैं सब कुछ भूल गई। सुबह के लगभग चार बजे जब मेरे बॉडीगार्ड ने मुझे उठाया तो मुझे ख़ुद पर बहुत ग़ुस्सा आया। मैं ख़ुद को कोसती रही कि मैं कैसे इस जगह को ख़ुद पर हावी होने दे सकती हूँ? क्यों जब भी मैं दुखी होती हूँ तो मुझे भावनात्मक सहारे के लिए यहाँ आने की ज़रूरत पड़ती है? मैं ख़ुद अपना सहारा क्यों नहीं बन सकती? बस उसके बाद मैंने यहाँ आना छोड़ दिया था।

उस दिन जो यहाँ पर रात का सन्नाटा था वह आज के इस सन्नाटे से बिलकुल जुदा था। तबके सन्नाटे में शांति थी, सुकून था। आज के सन्नाटे में बेचैनी है, शोर है। तब उस सुकून ने मुझे इस जगह दोबारा न आने के लिए मजबूर कर दिया था। आज इस बेचैनी ने मुझे यहाँ से न हिलने के लिए। बार-बार बस मुझे ये ख़याल परेशान कर रहा है कि अगर पुलिस ने इसे आत्महत्या का मामला मान लिया तो मीडिया मेरे नाम के साथ-साथ मेरे बाबा का नाम भी उछालने लगेगी। क्योंकि उन्होंने भी आत्महत्या की थी। तब उनकी उम्र भी चालीस के पास ही थी। वह ज़बरदस्ती दोनों मौतों में संबंध ढूँढ़ने की कोशिश करेगी। एक जेनेटिक डिप्रेशन तक की थ्योरी सामने आ जाएगी। लोग मेरे सोशल मीडिया पर पिछले कुछ दिनों में मेरी अपडेट की गई पोस्ट्स से मेरी मनोदशा पढ़ने की कोशिश करेंगे। न्यूज़ चैनल वाले

तो एक्सपर्ट ओपिनियन के नाम पर मनोवैज्ञानिकों की एक पूरी टीम बुलाकर एक प्रोग्राम बना देंगे। मेरे बारे में वो कुछ भी कहें इससे मुझे कोई फ़र्क नहीं पड़ता, लेकिन मेरे बाबा का नाम घसीटने पर मुझे दिक़्क़त होगी। तब मेरे बाबा की बॉडी का पोस्टमार्टम हुआ भी था या नहीं मैं नहीं जानती लेकिन अब उनकी निजी ज़िंदगी का पोस्टमार्टम ज़रूर होगा। क्योंकि उनका गुनाह बस इतना था कि उनकी बेटी एक सेलेब्रिटी थी।

पुलिस और CBI (अगर CBI तक केस पहुँचा तो) मिलकर भी अगर हत्यारे को नहीं ढूँढ़ पाती है तो वह इस केस को बिना आत्महत्या का लेबल लगाए भी तो बंद कर सकती है। और ये कोई पहली बार तो होगा नहीं। ऐसे न जाने कितने मामले बिना सुलझे बंद हो चुके हैं। आरुषि मर्डर केस उनमें से ही एक है। श्रीदेवी जी की मौत भी तो एक अनसुलझी पहेली बनकर रह गई थी। मेरी मौत भी अगर ऐसी ही एक अनसुलझी पहेली बनकर रह जाती है तो उससे मुझे कोई शिकायत नहीं होगी। लेकिन आत्महत्या! नहीं ये मुझे कभी गवारा नहीं होगा। आत्महत्या कायर लोग करते हैं। मैं पूरी ज़िंदगी कुछ भी रही हूँ पर कायर कभी नहीं थी। मुझे मुश्किलों से डर नहीं लगता था। लेकिन लोगों को सच से मतलब ही नहीं है। उन्हें बस एक इंस्टैंट क्लोज़र चाहिए होता है। आज की दुनिया पर मीडिया का इतना प्रभाव है कि अगर मीडिया बोल देगी कि ये मर्डर है, तो मर्डर है। आत्महत्या कह देगी, तो आत्महत्या है। वह ये सोचने की तकलीफ़ भी नहीं करेंगे कि मीरा का व्यक्तित्व जिस तरह का था वह ख़ुद की जान ले ले ये मुमकिन ही नहीं है। लेकिन शायद सोचना इस दुनिया की सबसे बड़ी लग्ज़री है। कुछ लोगों को इस बात पर शक होगा भी तो वे भी कर ही क्या लेंगे! उनकी आवाज़ को भीड़ की आवाज़ से दबा दिया जाएगा। भीड़ की न आँख होती है न ही कान। असल में उसका कोई चेहरा होता ही नहीं। सिर्फ़ एक मानसिकता होती है जो किसी भी तरह से अपनी बात मनवा लेना जानती है।

कल शायद पुलिस मेरे अंतिम संस्कार की अनुमति दे दे। लेकिन वह अनुमति किसे देगी? परिवार के नाम पर मेरी माँ है जिससे मैं शिमला छोड़ने के बाद से नहीं मिली। अब तक तो उसे भी ख़बर लग गई होगी। क्या वह मेरे अंतिम संस्कार के लिए मुंबई आएगी? हत्या के मामलों में पुलिस सभी निकट संबंधी और रिश्तेदारों को पूछताछ के लिए बुला लेती है। फिर वह तो मेरी माँ है। क्या पता उन्होंने उसे अब तक मुंबई बुला भी लिया हो! अगर आने के बाद भी उन्होंने मेरे अंतिम संस्कार की ज़िम्मेदारी नहीं ली तो? फिर कौन करेगा मेरा अंतिम संस्कार? राज़ी, रानी, राजीव? मेरी एडवोकेट टीम? स्टेट गवर्नमेंट? मेरा मैनेजर?

रिक्कू जी

उनका नाम यूँ तो राकेश नाथ शर्मा था। पर सब उन्हें रिक्कू जी कहकर बुलाते थे। वह मेरी पहली फ़िल्म के बाद से ही मेरे साथ थे। फ़िल्म इंडस्ट्री में लगभग सब उन्हें जानते थे। मुझसे पहले वह एक जाने-माने अभिनेता के साथ काम किया करते थे, जिससे किसी बात पर उनकी अनबन हो गई थी और उन्होंने निश्चय कर लिया था वह अब काम करेंगे तो सिर्फ़ किसी नये कलाकार के साथ। मेरी पहली फ़िल्म कोई कमर्शियल फ़िल्म नहीं थी। लेकिन उस फ़िल्म में मेरे काम को बहुत सराहा गया था। साथ ही फ़िल्म ने देश-विदेश में होने वाले कई फ़िल्म फ़ेस्टिवल में अवॉर्ड भी जीते थे। एक दिन रिक्कू जी का फ़ोन मेरे पास आया और उन्होंने कहा कि आज से मैं तुम्हारा मैनेजर हूँ। मेरे पास तुम्हारे लिए एक बहुत ही अच्छी स्क्रिप्ट है जिसे तुम कर रही हो। उन्होंने न तो मुझसे कुछ और पूछा और न ही मुझे कुछ कहने का मौक़ा दिया। वैसे भी उनके जैसा मैनेजर रखना कौन नहीं चाहेगा! मैंने बिना स्क्रिप्ट पढ़े ही उस फ़िल्म को साइन कर लिया था, जो फ़िल्म रिलीज के बाद ब्लॉकबस्टर साबित भी हुई थी। वह मुझसे उम्र में लगभग बीस साल बड़े थे। मुझे हमेशा उन्हें देखकर राजश्री फ़िल्म के बाबूजी आलोक नाथ जी की याद आती थी। उन्होंने काम के अलावा मुझसे कभी कोई बात नहीं की। न वह मुझसे कोई निजी सवाल पूछते थे न मैं उनसे। शायद इसी वजह से हम इतने साल साथ काम कर पाए। बस मुझे इतना पता था कि उनकी बीवी और दो बच्चे यहीं मुंबई में उनके साथ रहते थे।

मेरी रिटायरमेंट के बाद उन्होंने भी फ़िल्म इंडस्ट्री से संन्यास ले लिया था। और तबसे हमारी कोई मुलाक़ात नहीं हुई थी। अभी एक हफ़्ते पहले मुझे एक होटल की नयी बिल्डिंग के उद्घाटन के लिए बुलाया गया था। वहाँ मैंने रिक्कू जी को किसी बीस बाईस साल की लड़की के साथ एक-दूसरे की कमर में हाथ डाले लिफ़्ट की ओर जाते देखा था। लिफ़्ट का दरवाज़ा बंद होने से पहले उनकी नज़र मुझ पर पड़ गई और वह समझ गए थे कि मैंने उन्हें देख लिया है। उसके दो दिन बाद वह मुझसे मिलने आए। उस दिन इसरो को चंद्रयान 2 का लॉन्च करना था। मैं उसी के बारे में मोबाइल पर पढ़ रही थी। वह दबी आवाज़ में मुझसे बोले, "देखो, जैसा तुम सोच रही हो वैसा कुछ भी नहीं है।"

उनकी बात सुनने के बाद मैंने उनकी आँखों में झाँका। उन्होंने कोशिश की कि वह मुझसे आँख-से-आँख मिलाकर बात कर सकें। मगर आँखों में जब तिनका हो तो कोई किसी से आँख मिला भी कैसे सकता है!

"सच क्या है मैं और आप अच्छी तरह से जानते हैं।" कहकर मैं फिर से अपने मोबाइल पर कुछ पढ़ने लगी। मेरे लापरवाही भरे जवाब पर उन्हें ग़ुस्सा आ गया।

"तुम अगर अपना मुँह बंद ही रखोगी तो तुम्हारे लिए अच्छा होगा।"

उनकी आवाज़ में धमकी की गूँज थी। मुझे उनका धमकाना अच्छा नहीं लगा। मैंने पलटकर उनसे कहा,

“आपने जो अभी हरकत की है वह आप अगर ना करते तो मैं किसी से कुछ नहीं कहती। मगर अब मेरा मन बदल गया है। अब आप डर-डर के रहिए। मैं कभी भी आपके घर चाय पे आ सकती हूँ।”

क्या ये वजह किसी का मर्डर करने के लिए काफ़ी है? क्या सचमुच रिक्कू जी मुझे ज़हर दे सकते हैं? अगर उन्होंने ऐसा किया भी है तो उसका पुलिस को पता भी कैसे चलेगा? पुलिस पिछले एक हफ़्ते में मुझसे हर मिलने और फ़ोन पर बात करने वालों से पूछताछ तो करेगी। परंतु रिक्कू जी से मेरे संबंध कभी भी ख़राब नहीं रहे। इसीलिए उन पर शक करने की कोई वजह पुलिस को मिलेगी नहीं।

मैं कभी सोच भी नहीं सकती थी कि रिक्कू जी मुझे इस तरह से धमका भी सकते हैं। कभी सुना था एक इंसान के कई चेहरे होते हैं। इस बात का अनुभव उन्होंने मुझे करवा दिया था। सालों से रिश्तों पर जान-पहचान की धूल जमने के बाद भी रिश्ते किसी बाहरी तूफ़ान का सामना होते ही अपना अजनबीपन दिखा सकते हैं। विश्वास जताने के लिए लगाई गई मोहर या उनको दिए जाने वाले नामों पर भरोसा तो बस अपने मन को दी जाने वाली तसल्ली है, ठीक वैसी ही जैसे हम ख़ुद को देते हैं कि एक दिन सब ठीक हो जाएगा। सच तो यही है कि हम लोगों को उतना ही जान पाते हैं जितना वो चाहते हैं कि हम उन्हें जाने।

वैसे इंसान भी कहाँ ख़ुद को पहचान पाता है! वह भी अपनी पूरी ज़िंदगी बिना ख़ुद को ढूँढ़े जी ही लेता है। अगर यही होता है तो यही होता क्यों है?

सोचते-सोचते आधी रात कब निकल गई पता ही नहीं चला। चौपाटी पर मेरे अलावा सिर्फ़ एक कुत्ता नज़र आ रहा है। कितना अजीब है ना, बचपन से मुझे कुत्ते-बिल्लियों से बहुत डर लगता था। और आज एक कुत्ता ही यहाँ मेरी तन्हाई बाँट रहा है! क्या ये मुझे देख सकता होगा? कहते हैं ना जानवर आत्माओं को देख सकते हैं। पता नहीं लेकिन आज मुझे इसके यहाँ होने से डर नहीं लग रहा। ये एक और हादसे के जैसा ही था मेरे लिए। वैसे इंसान का जन्म भी प्रकृति के लिए एक हादसा ही तो है जिसके दुष्परिणाम उसे अपनी सारी ज़िंदगी भुगतने पड़ेंगे।

विज्ञापन कंट्रोवर्सी

पिछले साल मैंने नेटफ़्लिक्स पर एक सीरीज़ देखी थी जिसका नाम था 'Thirteen Reasons Why?' नहीं-नहीं, मैं न ही नेटफ़्लिक्स की और न ही इस सीरीज़ की कोई प्रोमोशन कर रही हूँ। वैसे भी हम सेलिब्रिटीज़ इस बात को लेकर बदनाम हैं। हम भूल से भी किसी प्रोडक्ट का नाम ले लें तो लोग सोचने लगते हैं कि हमें ऐसा करने के लिए पैसे मिले होंगे। इसी बात पर मुझे एक हसीन क़िस्सा याद आ रहा है। एक बार एक जींस बनाने वाली कंपनी ने मुझे उनके प्रोडक्ट का विज्ञापन करने का प्रस्ताव रखा। वह एक बहुत बड़ा विदेशी ब्रांड था जो पहली बार भारत में लांच होना था। उस विज्ञापन को करना किसी भी कलाकार के लिए बहुत बड़ी बात होती। लेकिन मैंने उसे करने से मना कर दिया था। मैं जींस नहीं पहनती थी। मैं बचपन से ही कोई भी लड़कों वाले कपड़े नहीं पहनती थी। बात ये नहीं थी कि मुझे ऐसा करना ग़लत लगता था। लेकिन मैं उनके जैसा नहीं दिखना चाहती थी। ऐसा भी नहीं कि मैं उनको नापसंद करती थी। बल्कि लड़कियों की तुलना में मैं उनके साथ जल्दी फ़्रेंडली हो जाती थी। लेकिन जब भी मैं लड़कों वाले कपड़े पहनती तो मुझे ऐसा लगने लग जाता था जैसे मैं मैं नहीं कोई और हूँ। जैसे मुझे किसी और के शरीर में क़ैद कर दिया गया हो। जैसे मुझसे मेरा एक लड़की होने का सुख छीन लिया गया हो। लेकिन मैंने कभी अपने विचार किसी पर नहीं थोपे। क्या पहनना चाहिए क्या नहीं ये एक बहुत ही निजी मामला होता है। कुछ भी हम जो अपनी मर्ज़ी से पहने वह हमें ख़ुशी देता है। मुझे लड़कों के कपड़े ख़ुशी नहीं देते थे। मेरे इस विज्ञापन को मना करने की ख़बर आग की तरह फैल गई। सबका मानना था कि मैंने ये ग़लत किया। रिक्कू जी भी मेरे इस फ़ैसले से ख़ुश नहीं थे। कोई मुझे रिग्रेसिव बोल रहा था, तो कोई ओल्ड स्कूल, तो कोई कह रहा था सफलता कुछ ज़्यादा ही सिर पर चढ़ गई है। इन लोगों में कुछ बॉलीवुड के भी लोग थे। लेकिन मैंने किसी को कोई सफ़ाई नहीं दी। मेरे फैंस अपनी चिट्ठियों में मुझे उन लोगों को मुझ पर किए गए कटाक्ष का जवाब देने को कहते रहे। फिर एक दिन एक नयी-नयी आई एक्ट्रेस, जिसकी पहली फ़िल्म हाल ही में हिट हुई थी, ने अपने एक इंटरव्यू में कहा,

"एक कलाकार पब्लिक के लिए काम करता है। उसे अपने काम से अपने निजी विचारों और पसंद को अलग रखना चाहिए। एक कलाकार अपने देश के बाहर अपने देश का प्रतिनिधित्व करता है। उसको कोई हक़ नहीं वह अपनी दकियानूसी सोच की वजह से अपने देश की छवि विदेशों में ख़राब करे।"

मुझसे जब इस बारे में कुछ कहने को कहा गया तो मैंने बस यही जवाब दिया-

"मुझे बिकनी वियर का विज्ञापन करने से कोई परहेज़ नहीं। अब मैं दकियानूसी ख़यालों की हूँ तो हूँ। एक और बात। किसी ने क्या पहनना है इससे इस बात का अंदाज़ा लगाना मूर्खता है कि उसकी सोच किस तरह की है। बाक़ी आपकी मर्ज़ी। आप कुछ भी कहने और सोचने के लिए स्वतंत्र हैं।"

मेरी इस बात को फ़िल्म इंडस्ट्री के कुछ लोगों ने सराहा तो कुछ लोगों ने चुप्पी साध ली। उस नयी एक्ट्रेस ने 'नो कमेंट्स' कहकर पत्रकारों से ख़ुद को बचाया। लेकिन नारी संगठन वालों ने मेरे ख़िलाफ़ मोर्चा खोल दिया। उनका कहना था कि मैंने बिकनी वियर के विज्ञापन की बात रखकर नारी की देवी समान छवि का तिरस्कार किया है। संदीप मित्तल ने भी इस कंट्रोवर्सी पर अपने कॉलम में लिखा-

"मीरा मुझे कभी निराश नहीं करती। उसकी अपनी एक सोच है जो इस ज़माने की सोच से तो बहुत अलग है और जिस पर चलते हुए वह घबराती नहीं। क्या हम इतने भी सक्षम नहीं कि जो जैसा है उसे वैसा ही अपना सकें? क्या हम उन लोगों से डरते हैं जो लोग अपनी पसंद के मुताबिक़ जीना चाहते हैं? मैं पूछता हूँ तब नारी संगठन वाले लोग कहाँ थे जब मीरा ने जींस का विज्ञापन करने से इनकार किया था? तब ये लोग कहाँ थे जब मीरा ने अविनाश लूथरा को पकड़वाने में अपनी छवि और करियर तक को दाँव पर लगा दिया था? तब तो इन लोगों के मुँह से दो शब्द भी नहीं निकले थे मीरा की प्रशंसा करने के लिए। क्या इन लोगों को पता भी है कि इस बात पर मीरा के ख़िलाफ़ मोर्चा निकालकर ये नारी की उसी छवि की माँग कर रहे हैं जिसके ख़िलाफ़ इनकी लड़ाई है!"

इसके बाद मैंने एशिया की एक टॉप फ़ैशन मैगज़ीन के लिए बिकनी वियर का विज्ञापन भी किया और उसके लिए विदेश भी गई। ये सब उस वक़्त की बात है जब इंडिया ने श्रीलंका को हराकर 2011 में वर्ल्ड कप जीता था। जिसका फ़ाइनल मैच भी मुंबई में हुआ था। ये मुझे इसलिए याद है क्योंकि जिस दिन इंडिया का फ़ाइनल मैच था, उसी दिन मैंने बिकनी के विज्ञापन का कॉन्ट्रैक्ट साइन किया था। उस दिन मुझे ऐसा लगा था जैसे मेरा देश और मैं दोनों जीत गए थे।

किसी को भी उसकी पसंद या नापसंद की वजह से मॉडर्न या ओल्ड फ़ैशंड कहकर दो अलग-अलग हिस्सों में नहीं बाँट देना चाहिए। कोई कभी भी कुछ भी हो सकता है। वह किस वक़्त क्या बनना चाहता है यह उसका अपना फ़ैसला होना चाहिए। और अगर देखा जाए तो नया और पुराना है क्या? वक़्त के दो अलग-अलग हिस्से। कोई अगर पुराने हिस्से को नये हिस्से में जीना चाहता है तो किसी का क्या जाता है! और अगर जाता भी है तो कोई भी उसके अपने पसंद के मुताबिक़ जीने के अधिकार पर अपना अधिकार स्थापित नहीं कर सकता। याद रखिए हम भी तभी तक दूसरों की दख़लअंदाज़ी से स्वतंत्र है जब तक हम दूसरे को अपनी हर बात से मुक्त रखते हैं। वरना हमारा सारा जीवन अपनी इसी सोच का ग़ुलाम होकर रह जाएगा कि दूसरा अपनी ज़िंदगी में क्या कर रहा है।

आख़िरी शब्द

नेटफ़्लिक्स की उस सीरीज़ की मुख्य किरदार थी हन्नाह, जो आत्महत्या कर लेती है। मरने से पहले वह तेरह ऑडियो टेप रिकॉर्ड करती है, उन लोगों के लिए जिनकी वजह से वह अपनी जान लेने पर मजबूर हो गई थी। पता नहीं मुझे अचानक से ये सीरीज़ क्यों याद आई? मेरी और उसकी मौत में कोई समानता नहीं। हालाँकि मुझे उसका अपनी जान लेना कभी सही नहीं लगा था। मगर कम-से-कम जाने से पहले वह अपने मन की बात तो कह पाई थी। मुझे तो यह भी मौक़ा नहीं मिला। कभी आपने ख़ुद से पूछा है कि ये मन होता क्या है? क्यों ये सिर्फ़ अतीत की यादों में या फिर भविष्य की चिंता में उलझा रहता है? अतीत के अनुभवों से सबक़ लेकर हम भविष्य के लिए चाहें कितनी ही नीतियाँ बना लें, हम करते वही हैं जो वर्तमान में हमारा मन चाहता है। फिर क्यों हमारा मन सिर्फ़ वर्तमान में जीना नहीं जानता? मैं क्यों इस बात से दुखी हूँ कि मैं मरने से पहले अपने मन की बात नहीं कर पाई? क्यों मैं सिर्फ़ इस बात से संतुष्ट नहीं हूँ कि अब तो मैं आपको अपनी कहानी सुना रही हूँ। कहानी इसीलिए कहा क्योंकि हर बीता हुआ पल पूरी कहानी का एक टुकड़ा ही होता है। ख़ैर!

मुझे इस बात का दुख है कि मैं अपने आख़िरी शब्द भी इस दुनिया में नहीं छोड़ पाई। लोगों के आख़िरी शब्दों को लेकर मेरा रुझान जॉन ग्रीन की किताब 'Looking For Alaska' को पढ़ने के बाद बढ़ा। उसके एक पात्र को सब नामी लोगों के आख़िरी शब्द याद थे। जब मैंने किताब पढ़ी थी तब मैं सोचती थी ऐसा भी क्या पागलपन लोगों के आख़िरी शब्दों के लिए! इसी सवाल का जवाब ढूँढ़ने के लिए मैंने लोगों के आख़िरी शब्द ढूँढ़-ढूँढ़कर पढ़ना शुरू किया। अगर मुझे किसी के मरने की ख़बर मिलती तो मेरा मन करता मैं उनके अपनों से पूछूँ कि जाते हुए आख़िरी बार उन्होंने क्या कहा था। मुझे समझ आने लगा था कि हमारे आख़िरी शब्द ही हमारे आख़िरी वक़्त का सच कहते हैं। जाने से पहले के उन आख़िरी पलों में कौन हमारे साथ था, हम क्या सोच रहे थे, हमें उस वक़्त क्या चाहिए था, हम ख़ुश थे या दुखी, हमें जाते-जाते भी किस बात की चिंता थी। वो शब्द किसी भी बारे में हो सकते हैं। जैसे मेरी दादी के आख़िरी शब्द थे, “इस मीठी को कहीं खोने मत देना।”

उन्हें अपने आख़िरी वक़्त में सिर्फ़ मेरी चिंता थी। उन्हें पता था कि उनके जाने के बाद मैं अकेली रह जाऊँगी।

शायद मरने से पहले मैंने भी कुछ कहा हो। जिसका पता मुझे कभी नहीं चलेगा। मैं हमेशा सोचती थी कि जब मैं साठ वर्ष की हो जाऊँगी तब ख़ुद की आत्मकथा प्रकाशित करूँगी, जिसे मैंने ख़ुद लिखा होगा। ऐसा बहुत कुछ था जो मैं दुनिया को बताना चाहती थी, उनसे कहना चाहती थी। मेरे कई सवाल थे जो मैं उनसे पूछना चाहती थी। मुझे तो इस बात का मौक़ा नहीं मिला। लेकिन अब दुनिया मेरे बारे में बात करेगी। जो मन में आएगा वह कहेगी। मेरी ज़िंदगी के ऊपर सवाल उठाएगी।

रीना माथुर

बारिश होने लगी है। वह कुत्ता भी बारिश से बचने के लिए कहीं चला गया। मैं कहाँ जाऊँ। जाने की ज़रूरत भी क्या है! अब मैं बचकर करूँगी भी क्या! मुंबई की बारिश का कोई भरोसा नहीं। मुझे आज भी याद है 26 जुलाई की वह तबाही जो इसी बारिश की वजह से हुई थी। ये महीना भी तो जुलाई का है। लेकिन वह बारिश अलग थी, ये बारिश अलग है। जैसे कल मैं ज़िंदा थी, आज मरी हुई हूँ। कल जो मैं कर सकती थी, आज नहीं कर सकती। कल तक बारिश मुझे भिगो सकती थी, आज मुझे ये छू भी नहीं रही है। मैं सबको देख सकती हूँ, कोई मुझे नहीं देख सकता। मैं सब कुछ सुन सकती हूँ, कोई मुझे नहीं सुन सकता। मरने के भी अपने ही अलग प्रिविलेज है। क्या हर कोई मरने के बाद आत्मा बनकर इस तरह भटकता है? आत्मा हमारी कॉन्शियस ही तो होती है न? जो हमें अच्छे-बुरे होने का फ़र्क़ समझाती है। हमें सवाल करना सिखाती है। जब हम ख़ुद को भूल जाते हैं तो हमें झकझोरती है। तो इसका मतलब जो लोग अपनी ज़िंदगी में इसे ढूँढ़ लेते हैं वहीं लोग मरने के बाद आत्मा बनकर तब तक इस दुनिया में रहते हैं जब तक उन्हें अपने सारे सवालों के जवाब न मिल जाएँ?

अभी इस बारिश में इतनी रात को अकेले इस चौपाटी पर ख़ुद को बैठे हुए, सोचते हुए, मुझे बस यही गाना याद आ रहा है- 'मुसाफ़िर हूँ यारो, ना घर है ना ठिकाना, बस यूँ ही चलते जाना है'।

मुझे अपना मुंबई का घर कभी घर-सा नहीं लगा। वह घर वो जगह थी जहाँ मुझे रहते हुए हमेशा यही लगता कि मैं यहाँ उधारी तौर पर रह रही हूँ। जैसे हम होटल में रहते हैं, जब कहीं घूमने जाते हैं। मेरे लिए घर का मतलब सिर्फ़ शिमला वाला घर था। एक दिन वह घर बिक गया। उसी दिन अटल बिहारी वाजपेयी जी प्रधानमंत्री बने थे। उनसे पहले आई के गुजराल इस पद पर थे। तारीख़ थी 7 मार्च 1998। यह मुझे इसीलिए याद है क्योंकि उसी दिन मेरा घर बेच दिया गया था। उधर देश की कुर्सी का मालिक बदला इधर मेरे घर का। उस दिन मैं बहुत रोई थी। शायद आई के गुजराल भी बहुत रोए हों। मैंने उसी दिन सोच लिया था कि मैं अपना घर एक दिन वापस ज़रूर ख़रीदूँगी। लेकिन जब मैं दोबारा वह घर ख़रीदने वापस लौटी तो मैंने वह घर नहीं ख़रीदा। सब कुछ पक्का हो गया था। लेकिन वह घर बदल गया था। उस घर की आत्मा बदल गई थी। उस घर के बाहर मेरी माँ के हाथों की छाप नहीं थी, जो उन्होंने तब लगाई थी जब वह शादी करके आई थी। वहाँ वह दीवार नहीं थी जिस पर मेरे दादा जी ने हर साल मेरी लंबाई नापने की परंपरा शुरू की थी। जिसे मेरी दादी ने उनके मरने तक निभाया था। मैंने बचपन में जगह-जगह दीवारों पर अपना नाम गोद रखा था। अब वह वहाँ नहीं थे। एक बार एक जगह दीमक लगने से मेरे बाबा ने वहाँ की लकड़ी निकाल दी थी। अब वह जगह मरम्मत कर दी गई थी। वह घर नया हो गया था। अब वह घर अपने नये मालिक की कहानी कह रहा था। कौन कहता है सिर्फ़ जीवित वस्तुएँ ही हमसे नाराज़ हो सकती हैं? मैं उस घर को गले लगाना चाहती थी। मगर उस घर

ने मुझे बाहर का रास्ता दिखा दिया। तब मैंने उस घर को छोड़ दिया था। उस दिन उस घर ने मुझे छोड़ दिया था। उसी दिन फ़िल्म कल हो ना हो रिलीज हुई थी। उसके बाद मैंने शिमला को मुड़कर दोबारा नहीं देखा था।

बारिश तेज़ होती जा रही है। वह 26 जुलाई का दिन जब मुंबई शहर पर उस बारिश ने अपना क़हर बरसाया था। साल 2005 का था शायद। मुझे आज भी कल की बात की तरह ही याद है। उस दिन मैं अपनी एक फ़िल्म की डबिंग के लिए स्टूडियो में थी। सड़कों पर पानी इतना बढ़ गया था कि जो जहाँ था वहीं रह गया। हम भी स्टूडियो में ही अटक गए थे। वैसे तो हम वहाँ सुरक्षित थे बस हमारे पास खाने को कुछ नहीं था। मैं हमेशा अपने बैग में ड्राइफ़्रूट्स रखा करती थी। सबको देने के बाद मैंने पैकेट फ़िल्म में मेरे साथ काम कर रही सह कलाकार रीना माथुर, जो कुछ-कुछ दीया मिर्ज़ा के जैसी दिखती थी, के आगे किया। उसके साथ मेरी फ़िल्म के दौरान अच्छी बनने लगी थी। हम एक ही उम्र के थे। मैं शूटिंग के ब्रेक में अक्सर उसे अपनी ही मेकअप वैन में बुला लिया करती थी। और वह भी अपने घर से लाया खाना मेरे साथ शेयर करती। उस दिन वह मुझे कुछ उखड़ी-उखड़ी लगी। उसने ड्राइफ़्रूट्स लेने से भी मना कर दिया था। पहले मैंने सोचा मेरा वहम है। लेकिन जब मैंने उससे कहा, "साथ अच्छा हो तो बुरे से बुरा टाइम भी पास हो जाता है।"

तब जो उसने जवाब दिया था, उससे मैं समझ गई थी कि इसके मन में कुछ तो चल रहा है।

"यानी तुम्हें पूरा विश्वास है कि जो इस वक़्त तुम्हारे साथ है वो तुम्हारे साथ अच्छा ही है?"

"मैं कुछ समझी नहीं।"

"कुछ नहीं बस यूँ ही बोल दिया।" उसने बात टालते हुए कहा।

"नहीं कुछ तो है। बोलो क्या हुआ है?" मैंने उस पर थोड़ा दबाव बनाया।

"बस ऐसे ही आजकल काम मिलना बहुत मुश्किल हो गया है। ख़र्चा भी मुश्किल से ही निकल पाता है।"

"तुम टीवी में कोशिश क्यों नहीं करती। पिछले कुछ सालों में टीवी की मार्केट बढ़ी ही है। तुम चाहो तो मैं एकता कपूर से बात कर सकती हूँ।"

ये बात मैंने सिर्फ़ कहने को नहीं कहीं थी। मैं सचमुच उसकी मदद करना चाहती थी। लेकिन शायद उसे मेरी ये बात चुभ गई थी और इसीलिए उसने मुझे ऐसा जवाब दिया था।

"ऊँची जगह पहुँचकर दूसरों को नीचा दिखाना बहुत आसान होता है। पर लोग भूल जाते हैं वह दूसरों को गिराकर ही वहाँ पहुँचे हैं।"

ये सुनकर मैंने उससे साफ़-साफ़ उसके मन की बात करने को कहा। फिर उसने मुझे बताया कि जो दूसरी फ़िल्म मैंने की थी, जिसे रिक्कू जी मेरे पास लेकर आए थे, उसका वादा उसे किया गया था। उसका मानना था कि अगर मैं बीच में नहीं आती तो आज मैं जहाँ हूँ वह वहाँ होती। मैंने उसकी सालों के मेहनत और उस फ़िल्म को पाने के लिए किए गए समझौतों पर पानी फेर दिया था। वह मुझसे नफ़रत करती थी। ये सब जानने के बाद मैंने उससे पूछा, "ऐसा था तो फिर इतने दिन से ये सब दोस्ती का नाटक क्यों?"

“करना पड़ा और कल से फिर से करूँगी। काम जो करना है। पानी में रहते बड़ी मछली के साथ बैर तो नहीं रख सकते।”

उसकी इस बात में कहीं से भी कोई मजबूरी या अफ़सोस नज़र नहीं आ रहा था।

“अब मुझे ये सब बताने का मतलब?”

“किसी से नफ़रत करो और उसे पता भी ना हो तो क्या फ़ायदा?”

कुछ देर चुप रहने के बाद मैंने उससे पूछा, “क्या तुम्हें सही में ऐसा लगता है, मेरी वजह से तुम्हारे साथ ये सब हुआ?

“हाँ!”

“सोच समझ के कह रही हो?”

“इसमें सोचना क्या?”

“तुम्हें नहीं लगता तुम्हारा ग़ुस्सा उस पर होना चाहिए जिसने तुम्हें फ़िल्म देने का वादा किया था?”

मुझे अभी भी उम्मीद थी कि शायद मेरी बातें सुनकर उसके मन में मेरे लिए थोड़ी-सी नफ़रत कम हो जाए।

“वो सब मैं नहीं जानती। तुम्हारी ग़लती बस इतनी है कि तुम आज सफल हो। और तुमने भी उस फ़िल्म को पाने के लिए पता नहीं क्या-क्या किया हो?”

उसकी ये बात सुनकर मुझे ज़रा भी ग़ुस्सा नहीं आया था। हाँ दो मिनट के लिए मुझे उसकी सोच पर अफ़सोस ज़रूर हुआ था।

“अगर मान भी लिया जाए मैंने इस फ़िल्म को पाने के लिए कुछ समझौते किए भी हों, पर वह तुम्हारे किए गए समझौतों से अलग क्यों है? तुम करो तो वह जस्टिफ़ाई हो सकता है मैं करूँ तो ग़लत? ऐसा क्यों?”

मैंने उसकी बात को समझने की कोशिश करते हुए उससे पलटकर प्रश्न किया।

“तुम कुछ भी कहो मैं बस इतना जानती हूँ कि उस फ़िल्म की पहली दावेदार मैं थी। उसके बाद से मेरा स्ट्रगल कभी ख़त्म ही नहीं हुआ। कभी-कभी जब मेरी फ़्रस्ट्रेशन बढ़ जाती है तो मेरा मन तुम्हारी जान लेने को करता है। तुम्हारे लिए मेरी नफ़रत की कोई सीमा नहीं। इस वक़्त भी मेरे मन में यही ख़याल है कि काश अभी तुम बाहर कहीं बारिश में फँसी होती और वहीं मर जाती। शायद किसी दिन मैं ही तुम्हें मार दूँ।”

ये कहकर वह वहाँ से चली गई, जैसे उसने जो कहा वह कोई ग़ौर करने वाली बात नहीं थी। उसकी बातों से मुझे धक्का-सा लगा था। पता नहीं लोग अंधे बनकर क्यों रहना चाहते हैं? वह सच का सामना करने से डरते क्यों है? मैं यह नहीं कहती कि उसके साथ जो हुआ वह ठीक हुआ, लेकिन इस बात की क्या गारंटी थी कि उसे वह फ़िल्म मिलने के बाद उसका करियर सिर्फ़ उड़ान ही भरता? क्यों लोग अपनी असफलताओं और कमियों का दोष दूसरों पर मढ़ते हैं? या फिर किसी एक को ज़िम्मेदार मान लेने से ख़ुद का दुख कम हो जाता है? क्यों लोग सोचने को वक़्त नहीं देना चाहते? क्यों लोग हमेशा आसान रास्ता ढूँढ़ते है? किसी से नफ़रत करना बहुत आसान होता है परंतु उस नफ़रत की सही वजह ढूँढ़ना बहुत मुश्किल। रीना ने मुझसे नफ़रत तो कर ली थी, लेकिन नफ़रत की सही वजह आज

तक उसके पास नहीं थी। एक समकालीन अभिनेत्री के रूप में मेरी सफलता से उसकी जलन मुझे समझ आती है, परंतु फ़िल्म न मिलने का ज़िम्मेदार वह मुझे मानती है, यह मुझे कभी समझ नहीं आया।

अगली बार शूटिंग पर जब हम मिले तो रीना का व्यवहार बिलकुल सामान्य था। लेकिन मेरी तरफ़ से कुछ भी पहले जैसा नहीं हो पाया। शायद मैं उसके जितनी अच्छी एक्ट्रेस नहीं थी। उसके बाद हमने कोई और फ़िल्म साथ में नहीं की थी। मुझे नहीं पता उसका बाद में क्या हुआ था। हाँ कुछ महीने पहले सोशल मीडिया पर एक ख़बर की हेडलाइन में अपना नाम देखकर मेरा ध्यान उस ख़बर पर गया था। हेडलाइन थी-

'मीरा की सह कलाकार रह चुकी रीना चाहती हैं उन्हें एक ख़ून माफ़ हो।'

असल में वह उस साल बिग बॉस की एक कंटेस्टेंट थी। तब एक टास्क में उससे उसकी एक इच्छा पूछी गई, तो उसका जवाब ये था। क्या ये बात उसने मेरे लिए कही थी? क्या आज चौदह साल बाद भी उसकी नफ़रत मेरे लिए कम नहीं हुई? क्या वह मेरी हत्या कर सकती है?

मरीन ड्राइव

बारिश बंद हो गई। आसमान में बादलों की लुका-छुपी अभी तक चल रही है। चाँद और तारे अपनी बारी आने का कहीं इंतज़ार कर रहे होंगे। वैसे मुझे पसंद है रात के आसमान को देखना। चुपचाप-सा, जाने कितने राज़ छुपाए भोला-सा नज़र आता है। जिस पल रात सुबह में बदल रही होती है उस पल को देखकर ऐसा लगता है जैसे पूरा आसमान हमसे कहना चाहता हो कि कुछ भी हमेशा के लिए नहीं रहता। हर रात की मंज़िल सुबह है। हर दुख का अंत सुख है। और सुख की भी एक निश्चित उम्र है। अभी कुछ देर में सुबह होने वाली है। ऐसे ही एक वक़्त पर मैं संदीप मित्तल के साथ मरीन ड्राइव पर सनराइज़ देखने रुकी थी। हम एक पुरस्कार समारोह के बाद होने वाली पार्टी से वापस आ रहे थे। हम सूरज उगने का इंतज़ार करने लगे। उसने आसमान की तरफ़ देखते हुए कहा, "लाइफ़ में कुछ चीज़ें कितनी प्रिडिक्टेबल होती हैं! हर दिन सुबह के साथ शुरू होता है और शाम पर ख़त्म हो जाता है।"

"हाँ, ये रोज़ होता है और हम रोज़ इनका इंतज़ार करते हैं।"

"इंतज़ार भी तो उन्हीं का होता है जो लौटकर आते हैं।"

हम बात एक-दूसरे से कर रहे थे पर हमारी नज़रें आसमान पर टिकी हुई थीं।

"मुझे तो अंसर्टेनिटी पसंद है जो अपने होने से मुझे हैरान कर दे।"

"Like a story! कब, कहाँ, कैसे शुरू हो जाए कोई नहीं कह सकता।" उसने मेरी आँखों में अपनी नज़र जमाते हुए कहा।

"Beginning of anything is my kind of thing."

हम दोनों की नज़रें एक-दूसरे पर ठहर गईं। हम दोनों ही एक-दूसरे की आँखों में उस संगीत को पढ़ने की कोशिश कर रहे थे, जो हमारे दिलों में धड़कनों के साथ बह रहा था। और फिर जिस पल रात सुबह में बदल रही थी हमारे होंठ एक-दूसरे के होंठों को चख रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे हम दोनों एक घटना थी, जो उस वक़्त के साथ उस जगह पर घट गई थी। वह हम दोनों का एक-दूसरे के साथ पहला चुंबन था। उस दिन देश में कोई प्रमुख घटना नहीं घटी थी। हमारा एक-दूसरे को चूमना ही उस दिन की ख़ास बात थी।

रात टूटकर सुबह में बिखर चुकी है। बिखरी हुई किरणें हर चीज़ को छूकर उनमें जान फूँक रही हैं। मेरे मरने के बाद ये पहली सुबह है। दूर एक नारियल वाले का स्टॉल नज़र आ रहा है। सुबह उठते ही मैं सबसे पहले नारियल पानी पीती थी। अभी तो पता नहीं मैं ख़ुद को जागा हुआ बोलूँ या कहीं लंबी नींद में खोया हुआ!

मुझे लगता है मुझे ख़ुद शहर में घूमकर देखना चाहिए कि क्या हो रहा है। यहाँ बैठे रहने से मुझे अपने सवालों के जवाब नहीं मिलेंगे। पर मुझे इस जगह को छोड़कर जाते हुए भी डर-सा लग रहा है। अगर इस जगह ने मुझे वापस आने पर नहीं अपनाया तो? मेरे शिमला वाले घर की तरह मुझसे मुँह मोड़ लिया तो? हमें हमेशा चुनना क्यों पड़ता है?

मुंबई शहर आज भी वैसे ही जागा है जैसे वह रोज़ जागता है। लोग अपने घरों से निकलकर वैसे ही काम पर जा रहे हैं, जैसे रोज़ जाते हैं। सच ही है किसी के होने ना होने से इस दुनिया पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

मीरा की मौत हत्या या आत्महत्या?

मीरा की अपने ही घर में रहस्यमय तरीक़े से मौत!

पूर्व अभिनेत्री मीरा अब नहीं रही...

अख़बार के स्टॉल पर जब मैंने ये हेडलाइंस पढ़ी तो मुझे कुछ भी महसूस नहीं हुआ। शायद मैंने अपनी मौत को स्वीकार कर लिया है। हर कोई मेरे बारे में ही बात कर रहा है। दुकानों पर लगे टीवी पर सिर्फ़ मेरी ख़बरें चल रही हैं। एंकर आदित्य महाजन के साथ फ़ोन पर है।

एंकर: आदित्य जी मीरा आपकी सह कलाकार रह चुकी थीं। आप दोनों ने साथ में कई फ़िल्में की हैं। लेकिन आप लोगों के निजी तौर पर ताल्लुक़ात कभी अच्छे नहीं रहे। आज आपको उनकी मौत की ख़बर सुनकर कैसा लगा?

आदित्य: ये आप कैसा सवाल कर रहे हैं? किसी की भी मौत की ख़बर सुनकर कैसा लगेगा? मैं अब तक विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ। मीरा ऐसे ही कैसे जा सकती है? मैं अभी तक सदमे में हूँ। मीरा उन लोगों में से एक थी जिसके साथ मुझे काम करके सबसे ज़्यादा मज़ा आया। She was brilliant at her work.

कुछ लोग तुम्हारी उम्मीदों के बिलकुल विपरीत होते हैं। मुझे इतना तो विश्वास था कि वह मेरे बारे में कुछ ग़लत नहीं कहेगा। मगर कुछ ऐसा बोलेगा मैंने सोचा नहीं था।

इसके बाद एंकर ने कई और लोगों से सवाल किए। शाहरुख़, सलमान, आमिर, अमित जी, काजोल, ऐश्वर्या, माधुरी, साथ में और भी कई बड़े सुपरस्टार के उनके द्वारा सोशल मीडिया पर पोस्ट किए शोक भरे संदेश पढ़कर सुनाए।

अब टीवी पर उसी राजनीतिक पार्टी का लीडर लाइव है जिसकी पार्टी से मैं चुनाव लड़ने वाली थी, जिसका नाम विनय कुमार है। देखने में बिलकुल परेश रावल लगता है।

मीरा जी की मौत सचमुच हम सबके लिए एक दुखद घटना है। अभी हम कल ही तो मिले थे उनसे। वह सिर्फ़ हमारी पार्टी की तरफ़ से चुनाव ही नहीं लड़ने वाली थीं बल्कि हमारे परिवार का हिस्सा भी बनने जा रही थीं। कल ही उन्होंने हमारे बेटे से शादी करने का प्रस्ताव स्वीकार किया था। हम नहीं जानते थे शादी की ख़बर की जगह दुनिया को उनकी मौत की ख़बर मिलेगी। अब जब तक हम उनके हत्यारों को पकड़ नहीं लेते तब तक चैन से नहीं बैठेंगे।

इस ख़बर ने लोगों के बीच सनसनी पैदा कर दी। पहले तो मीरा शादी करने वाली है यही एक बहुत बड़ी ख़बर थी। दूसरा, वह विनय कुमार के बेटे से शादी करने वाली थी इस ख़बर ने उन्हें चौंका दिया था। क्योंकि विनय कुमार के बेटे से बड़ा हरामी कोई नहीं हो सकता था। लोगों के लिए मेरी ज़िंदगी पहेली बनती जा रही है। मेरी मौत का सच क्या है ये पुलिस के लिए भी बता पाना मुश्किल हो रहा है। ख़बरों से पता लगा कि राजीव, रानी, राज़ी और मेरी माँ से पुलिस पूछताछ कर चुकी है। और मेरा अंतिम संस्कार आज शाम चार बजे होना

तय हुआ है। कल शाम चार बजे ही मुझे मेरे मरने का पता चला था। आज शाम चार बजे ही ये मेरे शरीर का दाह संस्कार कर देंगे। मेरा आज इस दुनिया से अस्तित्व हमेशा-हमेशा के लिए ख़त्म हो जाएगा। क्या मुझे अपना अंतिम संस्कार देखने जाना चाहिए? मेरे पास तो यहाँ सफ़ेद कपड़े हैं ही नहीं। मैं तो अब तक रात के कपड़ों में ही हूँ। वैसे क्या फ़र्क़ पड़ता है, कोई मुझे नहीं देख सकता! आज कोई मुझे अपने कैमरे में क़ैद नहीं कर सकता। वैसे कितने दुख की बात है, इन लोगों को ऐसे समय पर भी ये पड़ी होती है कि हम लोगों ने क्या पहना है, हम किसके साथ आए हैं, हमारे चेहरे पर क्या भाव हैं! एक बार ऐसी जगह पर एक रिपोर्टर ने मुझसे पूछा था कि आपकी आज की ड्रेस किसने डिज़ाइन की है? और वह ड्रेस कुछ और नहीं सादा सफ़ेद कुर्ता और चूड़ीदार पजामी थी।

न्यूज़ चैनल वाले इस चर्चा में लगे हैं कि संदीप मित्तल ने अब तक मीरा के लिए कुछ क्यों नहीं कहा।

ये क्या अचानक से रिक्कू जी टीवी पर कैसे आ गए?

एंकर: मीरा के मैनेजर रह चुके राकेश नाथ शर्मा उर्फ़ रिक्कू जी का विवादास्पद बयान। इस बयान को सुनकर आप भी चौंक जाएँगे। आज तक हम जो भी मीरा के बारे में सोचते आए, क्या मीरा वैसी ही थीं? सुनिए रिक्कू जी ने क्या कहा।

रिक्कू जी: मीरा के साथ मैंने लगभग पंद्रह साल काम किया था। मैं उसके सभी राज़ से वाक़िफ़ भी था। पर मुझे उसकी निजी ज़िंदगी से कोई मतलब नहीं था। बस एक बात छुपाने के लिए मैं ख़ुद को कभी माफ़ नहीं कर पाया। आज जब मीरा की मौत का सुना तो मुझे लगा यही सही वक़्त है इस बात को बताने का। मैं नहीं जानता मीरा की हत्या हुई या उसने ख़ुद को मार दिया। लेकिन वह ख़ुद को मारने के लिए सक्षम थी। उसका दिमाग़ी संतुलन पूरी तरह ठीक नहीं था। वह कब क्या कर जाए उसे ख़ुद नहीं पता होता था। अविनाश लूथरा ने उसके साथ उस दिन कुछ नहीं किया था। वह चाहे कितना भी बड़ा गुनहगार रहा हो लेकिन उस दिन उसकी कोई ग़लती नहीं थी। उस दिन फ़िल्म की डील को लेकर उसने मीरा की सभी शर्तें नहीं मानी तो मीरा ने उसे फँसाने के लिए ये सब नाटक किया। और भी ऐसी कई बातें हैं मगर अब जो इस दुनिया से चला गया उसे क्यों बदनाम किया जाए! मीरा ने बॉलीवुड को बहुत अच्छा वक़्त दिया है। हमें बस उसे याद करके मीरा की आत्मा की शांति की दुआ करनी चाहिए।

वाह रिक्कू जी! ख़ुद के चरित्र पर आँच न आए उससे पहले आपने मेरे चरित्र को शक के घेरे में डाल दिया। कहीं सचमुच आपने ही तो मुझे ज़हर नहीं दिया?

अब तक तो सोशल मीडिया पर लोगों ने मुझे ट्रोल करना शुरू भी कर दिया होगा। जो मेरे सच्चे प्रंशसक हैं, वो उनको जवाब दे रहे होंगे। सोशल मीडिया भी एक अजीब जगह है। दुनिया के सारे युद्ध लोग यहीं बैठकर लड़ लेते हैं। यहीं से लोगों को एक दिन आसमान पर चढ़ा देते हैं। यहीं से ज़मीन पर गिराने में भी ज़रा वक़्त नहीं लगाते।

एक न्यूज़ चैनल पर डिबेट भी शुरू हो गई। डिबेट इस बात की कि किसी ग़लत व्यक्ति को सज़ा दिलाने के लिए क्या ग़लत तरीक़ा अपनाना सही है? बीच-बीच में वह पब्लिक ओपिनियन की फ़ुटेज भी दिखा रहे हैं। कुछ लोग मेरे पक्ष में बोल रहे हैं तो कुछ लोगों का

मानना है कि मीरा अपनी इस सोच के साथ समाज के लिए ख़तरनाक भी साबित हो सकती थी। तो कोई कह रहा था कि एक को उसके जुर्म की सज़ा दिलाने के लिए दूसरा भी एक जुर्म कर दे तो वह भी किसी गुनहगार से कम नहीं।

अंतिम संस्कार

शाम के चार बज रहे हैं। श्मशान घाट पर मेरा मृत शरीर अपनी आख़िरी यात्रा पर जाने को तैयार हैं। रिक्कू जी वाली ख़बर के बाद मुझे लगा था यहाँ कोई नहीं आएगा। या आएँगे भी तो बहुत कम लोग। लेकिन आज यहाँ बॉलीवुड का हर जाना-माना चेहरा नज़र आ रहा है। संदीप मित्तल भी यहाँ है। माँ मेरी कितनी बूढ़ी लगने लगी है! मेरी विदाई एक स्टार की तरह ही हो रही है। लेकिन मुझे अग्नि कौन देगा?

जैसे ही पंडित जी मेरी चिता को अग्नि देने लगे मेरी माँ ने उन्हें रोक लिया और कहा मेरी बेटी अनाथ नहीं थी। फिर ख़ुद मेरी चिता को आग लगाई। जब कोई मर जाता है तभी क्यों लोगों को अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास होता है? उनके साथ ग़लत करने का पछतावा होता है? तब क्या प्रायश्चित करना ज़्यादा आसान हो जाता है? या फिर दुखी दिखने में क्या जाता है?

शाम धीरे-धीरे ढल रही है। कल यही वक़्त था जब मैं यहाँ आई थी। तब मुझे समझ ही नहीं आ रहा था कि मेरे साथ क्या हो गया। आज मैं ख़ुद की चिता जलते देखकर आई हूँ। आज मुझे मरे हुए एक दिन हो गया। कल दो दिन हो जाएँगे। परसों तीन दिन। फिर एक हफ़्ता, एक महीना, एक साल कब हो जाएगा पता भी नहीं चलेगा। धीरे-धीरे मैं लोगों की यादों में फीकी पड़ती जाऊँगी। कल वहाँ मेरी जगह कोई और ले लेगा। उन्हें मैं तभी याद आऊँगी जब वह याद करना चाहेंगे। जैसे गणतंत्र दिवस पर हम याद करते हैं कि इस दिन हमारा संविधान बना था। वैसे भी बंदा क्या-क्या याद रखे! भूल जाना इंसान को मिला सबसे बड़ा वरदान है।

आज अपनी विदाई देखकर मुझे वह दिन याद आ रहा है जब मेरा स्वागत इस दुनिया में किया गया था। मैंने अपनी दादी से अपने बचपन की इतनी बार कहानियाँ सुनी हैं कि मुझे लगता है जैसे मैंने मेरा बचपन ठीक वैसे ही देखा है जैसे संजय ने महाभारत का युद्ध देखा था।

शिमला, दी बिगनिंग

शिमला, हिमाचल की गोद में बसा एक छोटा-सा पहाड़ी इलाक़ा है जिसे हिमाचल की राजधानी के नाम से भी जाना जाता है। इस जगह ने, यहाँ के मौसम ने, अँग्रेज़ों का भी दिल जीत लिया था। जिस वजह से उन्होंने इसे अपना समर कैपिटल घोषित कर दिया था। शिमला का नाम एक हिंदू देवी श्यामला देवी के नाम पर रखा गया था। जैसे मेरा नाम मीठी इसलिए रखा गया था क्योंकि मेरे दादा जी को मिठाई बहुत पसंद थी। पिछली तीन पीढ़ी से हमारे ख़ानदान में कोई लड़की पैदा नहीं हुई थी। हर पीढ़ी में सिर्फ़ एक लड़का था। जब मेरा जन्म हुआ तो मेरे दादा जी इतने ख़ुश हो गए थे कि उन्होंने अपनी सबसे पसंदीदा चीज़ के ऊपर मेरा नाम रख दिया। वह स्वतंत्रता सेनानी रह चुके थे। मेरी दादी से उनका दूसरा विवाह था। मेरी दादी उनसे लगभग आधी उम्र की थी। मेरे जन्म के लगभग चार साल बाद उनका निधन हो गया था। वह क्रिकेट के बहुत शौक़ीन थे। जिस दिन वह मरे उस दिन इंडिया ने अपना पहला वर्ल्ड कप जीता था। जिसे देखकर उनके मुँह से यही शब्द निकले थे कि अब चला भी जाऊँ तो ग़म नहीं। उसी रात वह चल बसे।

जिस दिन मेरा जन्म होने वाला था उस दिन बहुत तेज़ बारिश हो रही थी। वह जुलाई का महीना था। साल 1979 था। महीना शुरू हुए अभी सिर्फ़ सात दिन हुए थे। तब देश में कांग्रेस की सरकार थी। मेरे दादा जी कांग्रेसी विचारधारा के बहुत बड़े समर्थक थे। इसीलिए मेरे बाबा भी थे। हर चीज़ की तरह किस पार्टी को वोट दिया जाएगा ये भी विरासत में मिला था। शिमला के संकरे और ऊँचे-नीचे रास्तों की वजह से माँ को अस्पताल ले जाना मुमकिन नहीं था, इसीलिए घर में दाई को बुलाया गया। और इस तरह शाम के चार बजे मेरा जन्म हुआ। मेरे जन्म लेते ही दादाजी ने पूरे मोहल्ले में मिठाई बँटवा दी थी। मेरी दादी किसी भी आने-जाने वालों को मेरा चेहरा नहीं दिखा रही थी। उन्हें डर था कहीं मुझे किसी की नज़र न लग जाए। उसी दिन मेरे बाबा को पता चला कि उनकी प्रोमोशन होने के साथ-साथ उनकी तनख़्वाह भी दो सौ रुपये बढ़कर बारह सौ रुपये हो गई है। मेरे बाबा हिमाचल बिजली विभाग में कार्यरत थे। तीन दिन बाद जब उन्हें तनख़्वाह मिली तो वह डायनोरा का टीवी ख़रीद लाए जो एक इनबिल्ट कैबिनेट के साथ आया करता था, जिसके चैनल वाले नॉब को घुमाने में मुझे बहुत मज़ा आता था। इससे पहले हमारे घर में मर्फ़ी का रेडियो था जिसे दादा जी ने अपने क्रिकेट के शौक़ के चलते ख़रीदा था। यूँ तो बाबा टीवी पहले भी ख़रीद सकते थे लेकिन टीवी न ख़रीदकर वह दादाजी से अपनी नाराज़गी दिखाते थे। मेरे बाबा को एक्टिंग का बहुत शौक़ था। कॉलेज के ज़माने में उन्होंने कई बार कॉलेज कल्चरल एक्टिविटी में होने वाले नाटकों में हिस्सा लिया था। वह फ़िल्मों में अपनी क़िस्मत आज़माना चाहते थे। वह रिट्ज़ सिनेमा हाल, जो शिमला का सबसे पुराना सिनेमा हाल है, में लगने वाली हर फ़िल्म देखा करते थे। यही नहीं रिज और माल रोड के मध्य स्थित गेटी थियेटर जो कभी मशहूर इंग्लिश आर्किटेक्ट हेनरी इरविन के द्वारा बनाई गई बिल्डिंग टाउन हॉल का हिस्सा हुआ करता था, उसमें होने वाला हर नाटक भी देखने जाते थे। आज

एशिया में ये इकलौता गोथिक स्टाइल थियेटर बचा है। लेकिन जैसा उस ज़माने में हुआ करता था हमारे घर में भी वैसा ही हुआ। दादाजी को बाबा का एक्टिंग से जुड़े किसी भी विषय पर दिलचस्पी लेना पसंद नहीं था। मेरे बाबा में उनके ख़िलाफ़ जाने की हिम्मत नहीं थी। या फिर अपने सपने को पूरा करने के लिए जितनी आग चाहिए होती है उतनी आग बाबा में नहीं थी। इसीलिए वह पढ़-लिखकर अपने बाबा के लायक़ बेटे बन गए। मगर उन्होंने फ़िल्में देखना छोड़ दिया था। उस दिन से उन दोनों के बीच में एक शीत युद्ध की भी शुरुआत हो गई थी।

जब मैं पैदा हुई तो बाबा मेरे पैदा होने की ख़ुशी में टीवी ले आए ताकि फ़िल्में देख सकें। मगर दादा जी से उनकी नाराज़गी यूँ ही बरक़रार रही। तबसे वह मेरे हर जन्मदिन पर ख़ुद को वह चीज़ दिया करते थे जो उन्हें ख़ुद के लिए चाहिए होती थी। जैसे मेरे पहले जन्मदिन पर उन्होंने कोनिका का कैमरा ख़रीदा। जिसमें 36 तस्वीरों का रोल डाला जाता था। इससे उन्होंने मेरी बहुत सारी तस्वीरें ली थीं। लेकिन कैमरा ख़रीदने की वजह मैं नहीं थी। उन्हें प्रकृति से बहुत प्रेम था। वह रोज़ सुबह पाँच बजे उठते थे ताकि सुबह की सैर पे जा सकें। मेरे होने के बाद अचानक उन्हें प्रकृति को कैमरे में क़ैद करने की धुन सवार हो गई और इसी के चलते मेरे जन्मदिन पर उन्होंने ख़ुद को कैमरा तोहफ़े में दे दिया। फिर दूसरे जन्मदिन पर महँगा पैन ख़रीद लाए और तीसरे पर महँगे जूते और चौथे पर वीसीआर। जैसे मेरे जन्म के बाद उन्होंने फिर से अपने लिए जीना शुरू कर दिया था। जब पाँचवाँ जन्मदिन आया तब तक मुझे गिफ़्ट का मतलब समझ आने लगा था और मैंने ज़िद करके अपने लिए साइकिल ली थी। चाहे उन्होंने अपनी ज़िंदगी जीना शुरू कर दिया था परंतु उनकी दादाजी के साथ तब तक ठनी रही जब तक दादाजी अपने आख़िरी पल तक नहीं पहुँच गए।

दादाजी उस दिन इंडिया के वर्ल्ड कप जीतने की ख़ुशी में व्हिस्की का पैग लगा रहे थे। बाबा वीसीआर पर कोई फ़िल्म देख रहे थे। दादा अचानक बाबा से बोले, "पप्पू, आज तू बाबू मोशाय वाला डायलॉग बोल के सुना दे।"

वैसे तो मेरे बाबा का नाम अशोक सहगल था लेकिन मेरे दादाजी उन्हें प्यार से पप्पू बुलाते थे जो उन्होंने उनके शीत युद्ध शुरू होने के बाद से बुलाना बंद कर दिया था। आज दादा के मुँह से अपना नाम सुनकर बाबा दादा के पास जाकर बैठ गए जैसे उन्हें इसी दिन का इंतज़ार था। फिर बाबा ने उन्हें आनंद और शोले फ़िल्म के बहुत सारे डायलॉग सुनाए।

"बाबू मोशाय, ज़िंदगी और मौत ऊपर वाले के हाथ है। उसे ना तो आप बदल सकते हैं और ना मैं। हम सब तो रंगमंच की कठपुतलियाँ है जिसकी डोर ऊपर वाले की उँगलियों में बँधी है।"

"साला ज़िंदगी थी तो मरा नहीं, अब मर गया, तो मैं ही नहीं।"

"कब, कौन, कैसे उठेगा यह कोई नहीं कह सकता।"

ये डायलॉग दादाजी ने बोला। ये सुनकर बाबा सहम गए। और उन्होंने मूड को हल्का करने के लिए शोले फ़िल्म के डायलॉग सुनाने शुरू कर दिए।

"यहाँ से 50-50 कोस दूर जब कोई बच्चा रोता है, तो माँ उसे कहती है बेटा सो जा, नहीं तो गब्बर आ जाएगा।"

"जब तक तेरे पैर चलेंगे उसकी साँस चलेगी, तेरे पैर रुके तो ये बंदूक़ चलेगी।"

"ये हाथ हमको दे दे ठाकुर!"

बाबा डायलॉग सुनाते हुए ऐसे लग रहे थे जैसे वह किसी और ही दुनिया में हैं। दादाजी उन्हें अभिनय करते देखे जा रहे थे। फिर उन्होंने भी एक डायलॉग बोला जिस पर बाबा और दादा ने साथ मिलकर ठहाके लगाए।

"जब तक तेरे ये डायलॉग चलेंगे तब तक मेरा पैग चलेगा।"

उस पल के बाद दोनों के बीच की सारी कड़वाहट उनकी आँखों के पानी में बह गई थीं। सालों के ज़ंग लगे रिश्ते की डोर में जैसे तेल पड़ गया हो। वो साउंड प्रूफ़ दीवार जो उन दोनों के बीच में खड़ी हो गई थी वह दोनों के दिलों से उठने वाले जज़्बात की आँधी से एक रेत से बने टीले की तरह ढह गई। फिर दोनों ने मिलकर एक-एक पैग लगाया। तब बाबा ने उनसे कहा कि उन्हें दादा और दादी अमिताभ बच्चन और जया भादुड़ी जैसे लगते हैं। क्योंकि दादा लंबे और दादी नाटी हैं। ये सुनकर दादा मुस्कुराए और बाबा से बोले, "पप्पू, तू बहुत बढ़िया कलाकार है।"

ये कहकर दादा ने बाबा के सिर पर हाथ फेरा और सोने चले गए।

अगले दिन दादा सोकर नहीं उठे। बाबा ने फिर से हमारे लिए जीना शुरू कर दिया।

हमारा घर शिमला के अप्पर कैथू में स्थित था। एक बहुत पुराना बना हुआ लकड़ी का घर जिसे दादाजी ने अपनी रिटायरमेंट के बाद ख़रीदा था। मेरी माँ इसी घर में शादी करके आई थी। मेरी माँ को मेरे बाबा से प्यार हो गया था तो मेरे बाबा ने कहा चलो शादी करनी ही है तो तुमसे कर लेते हैं। मेरी माँ ने बीएड किया था, ये सोचकर कि टीचर बनेंगी, परंतु बाबा के प्यार में पड़ जाने के बाद उन्होंने अपने टीचर बनने के सपने को भुला दिया था और हाउसवाइफ़ बन गई थी। उन्हें बाबा देवानंद के बड़े भाई विजय आनंद के जैसे लगते थे और ख़ुद को वह नीतू सिंह की कार्बन कॉपी कहतीं। जब उनकी शादी हुई तो मेरे बाबा की उम्र छब्बीस और माँ की चौबीस वर्ष थी। मेरा जन्म उनकी शादी के दो साल बाद हुआ था। कुल मिलाकर हम सब अपने-अपने रोल में एक-दूसरे के साथ ख़ुश थे।

हर रविवार हम चारों माल रोड और रिज पर घूमने जाया करते थे। कभी हम छोटे शिमला से दूर दिखती टॉय ट्रेन देखा करते तो कभी लक्कड़ बाज़ार से बाबा मुझे बहुत सारे खिलौने और मेरी पसंद की चीज़ें दिलवाते।

शिमला का मौसम पूरे साल ठंडा रहता है। गर्मियों में ज़रा-सी गर्मी बढ़ जाए तो बारिश हो जाती है। यहाँ पर देवदार के वृक्ष बहुत पाए जाते हैं। बहुत ज़्यादा आँधी तूफ़ान हो तो यह वृक्ष टूटकर गिर जाते हैं। लेकिन इनकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है। पूरे साल ठंड रहने की वजह से घर को गर्म करने के लिए मैं बाबा के साथ अक्सर लकड़ियाँ काटने जाती थी। वह पल मेरे बाबा के साथ सबसे निजी और ख़ूबसूरत होते थे। उस वक़्त बाबा मुझसे मेरे स्कूल के बारे में, मेरे दोस्तों के बारे में, मेरी ज़रूरतों के बारे में पूछा करते थे। मैं उनको बड़े चाव से सारी बातें बताया करती।

दादा की मौत के बाद बाबा ने फिर से फ़िल्में देखना छोड़ दिया था। अब वह सिर्फ़ वही करते थे जो हमें पसंद था। यह पता ही नहीं चलता था कि वह नाराज़ हैं या उन्हें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। दादी बताती थीं जब 1984 में इंदिरा गाँधी की उनके सिख बॉडीगार्ड ने गोली मारकर हत्या कर दी थी तब पूरे देश में कितने ही सिख दंगों में मारे गए थे। हमारे घर से दो घर छोड़कर एक बूढ़ा सिख जोड़ा रहा करता था। वह सुरक्षित रहें इसलिए दादी उन्हें अपने घर ले आई थीं। बाबा दादा की तरह ही पक्के कांग्रेसी थे। दादी को डर था कहीं बाबा उन्हें देखकर ग़ुस्सा न हो जाए। पर बाबा ने कुछ नहीं बोला, जैसे उन्हें कोई फ़र्क़ ही नहीं पड़ता था। कोई कुछ भी करे वह किसी से कुछ नहीं कहते थे। बाबा ज़िंदा होते हुए भी मरे हुए लोगों जैसे जी रहे थे।

जब मैं छह साल की थी मेरी दादी ने मुझे एक कपड़े की गुड़िया बनाकर दी थी। दादी ने ऊन से उसके बहुत लंबे बाल बनाए थे। जो बिलकुल मेरे जैसे थे। उन्होंने वह गुड़िया मुझे देते हुए कहा था कि ये गुड़िया मैं तुम्हें इसलिए नहीं दे रही ताकि इसका ख़याल रखते-रखते तुम दूसरों का ख़याल रखना सीख जाओ। इस गुड़िया के रूप में मैंने तुम्हें बनाया है। अब इसका ख़याल वैसे ही रखो जैसे तुम ख़ुद का रखना चाहती हो। इसको वैसे ही आकार दो जैसे तुम ख़ुद की ज़िंदगी को देना चाहती हो। मैंने तब भी उसकी शादी किसी गुड्डे से कभी नहीं करवाई थी। तब भी मैं यही सोचती थी कि अगर मैंने अपनी गुड़िया को किसी और को सौंप दिया तो वह कभी उसका मेरे जैसा ख़याल नहीं रख पाएगा। वह गुड़िया अब भी मेरे अपार्टमेंट में होगी।

मेरी स्कूल जाने की उम्र हुई तो बाबा ने मेरा दाख़िला शिमला के सबसे अच्छे स्कूल लोरेटो में करा दिया था। वह स्कूल शिमला में अँग्रेज़ों के ज़माने से ही है। मैं पढ़ने में बहुत तेज़ थी। उस स्कूल में एक बहुत बड़ी लाइब्रेरी थी। वहीं से मुझे किताबें पढ़ने का शौक़ चढ़ा था। अक्सर वहाँ लड़कियाँ मेरे नाम का मज़ाक़ उड़ाया करती थीं। बोलतीं मीठी तो चीज़ें होती हैं नाम नहीं। इस बात पर वे सब आपस में मिलकर ज़ोर-ज़ोर से हँसती थीं। माँ-बाबा कहते कि अगर तुम चाहो तो हम तुम्हारा नाम बदल देते हैं। लेकिन जितना वो मेरा मज़ाक़ उड़ातीं, उतना ही मुझे अपना नाम अच्छा लगता था। मैं सोचती थी कि मुझमें कुछ ऐसी बात है जो उनमें नहीं। और जो चीज़ हमारे पास नहीं होती उसका या तो हम मज़ाक़ उड़ाते हैं या ज़रूरत नहीं है कहकर भूल जाते हैं। भीड़ से अलग दिखाई देने वाली चीज़ें दुनिया के लिए विचित्र और अजीबो-ग़रीब ही होती हैं। मुझे भीड़ से अलग दिखना अच्छा लगता था।

उस दिन मौसम बहुत अच्छा था। हम सब ने झाखू मंदिर जाने का प्लान बनाया। वहाँ हनुमान जी विराजते हैं। उस जगह बहुत बंदर होते हैं। मैं जब भी वहाँ जाती थी हर बार बंदर मुझसे प्रसाद का पैकेट लेकर भाग जाते थे। उस दिन माँ ने मुझे पैंट और टी-शर्ट पहनाया था। उस वक़्त मेरी उम्र आठ साल की थी। उस मंदिर तक जाने के लिए थोड़ी चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। कुछ मेरी ही उम्र के लड़के ऊपर तक जाने के लिए दौड़ लगाने लगे। मैं भी उनको देखकर उनके साथ दौड़ में शामिल हो गई। वो मुझे भागते हुए देखकर कहने लगे कि यह लड़कियों के बस की बात नहीं। मैंने कहा, नहीं लड़कियाँ लड़कों से हर बात में बेस्ट होती हैं। फिर उन्होंने हँसते हुए कहा, अगर ऐसा है तो तुमने हमारे जैसे कपड़े क्यों

पहने हैं? हालाँकि ये कोई बड़ी बात नहीं थी पर मुझे बहुत सही लगी। हम लड़कियाँ ही क्यों उनके जैसे कपड़े पहनती हैं? अगर कपड़ों का कोई जेंडर नहीं होता तो वो हम जैसे कपड़े क्यों नहीं पहनते? लड़कों के कपड़े यूनिवर्सल और लड़कियों के एक्सक्लूसिव क्यों? क्या हम जैसा दिखने में उनकी इज़्ज़त कम होती है? मैं ये नहीं कहती जो मैं सोच रही थी वह सही ही था। या किसी को भी उनके जैसे कपड़े नहीं पहनने चाहिए। बस मेरे मन में ये सवाल उठे और उस दिन वह मज़ाक़ में कहीं हुई बात मुझे इस तरह चुभी कि उस दिन के बाद मैंने लड़कों की तरह दिखना और उनसे किसी भी तरह की प्रतियोगिता करना बंद कर दिया था। यहाँ बात सिर्फ़ कपड़ों की नहीं थी। इस घटना ने मुझे ये एहसास दिला दिया था कि अगर हम लड़कों के साथ क़दम-से-क़दम लड़की बनकर ही मिलाएँगे तभी सही मायनों में आगे बढ़ पाएँगे। वरना लड़कों की एक नयी क़िस्म की फ़ौज तैयार हो जाएगी।

लड़का-लड़की की बात पर मुझे एक और क़िस्सा याद आ गया। एक बार एक जाने-माने निर्माता करण भट्ट मेरे पास एक फ़िल्म का प्रस्ताव लेकर आए। मगर जो तारीख़ें वह मुझसे माँग रहे थे उस समय को मैंने बहुत पहले से ही अपने लिए बचाकर रखा हुआ था। कम-से-कम छह महीने के लिए मैं दुनिया की सैर पर जाना चाहती थी। मैंने स्क्रिप्ट पढ़ी तो मुझे उसमें इतना कुछ ख़ास नज़र नहीं आया, जिसके लिए मैं अपना प्लान रद्द करती। ऊपर से जब उन्होंने मुझे बताया कि फ़िल्म के हीरो के कहने पर वह मेरे पास फ़िल्म का ऑफ़र लेकर आए हैं तो मेरा मन उस फ़िल्म से पूरी तरह हट गया था। मुझे काम के लिए किसी की सिफ़ारिश की ज़रूरत नहीं थी। मैंने उन्हें फ़िल्म के लिए यह कहकर ना कर दिया था कि मुझे स्क्रिप्ट पसंद नहीं आई। रिक्कू जी इस बात से मुझसे काफ़ी दिन तक नाराज़ रहे थे। इस बात का ज़िक्र करण भट्ट ने अपने एक इंटरव्यू में किया था-

एक हीरोइन का काम फ़िल्मों में सिर्फ़ ग्लैमर और हीरो का लव इंटरेस्ट दिखाने का होता है। इसके बावजूद मैंने मीरा को हीरो के बराबर पैसे ऑफ़र किए थे। तब भी उसने फ़िल्म करने से साफ़ इनकार कर दिया। मैं नहीं कह रहा मगर सच तो यही है की एक हीरोइन के करियर की उम्र बहुत छोटी होती है। इसलिए इतना भी घमंड करना अच्छा नहीं। आज जिस सफलता के मुक़ाम पर वह है, वहाँ कल कोई और होगा। मुझे नहीं लगता अब मैं मीरा के साथ भविष्य में किसी और फ़िल्म पर काम करने के बारे में सोचूँगा भी।

इस इंटरव्यू के दो दिन बाद मैं एक जज बनकर मिस इंडिया कॉन्टेस्ट के समारोह पर गई। वहाँ एक जर्नलिस्ट ने मुझसे करण भट्ट की कॉन्ट्रोवर्सी के बारे में सवाल किया। मैं मेरा पक्ष सुनाना चाहती थी। मैं भी मौक़ा ढूँढ़ रही थी करण भट्ट को जवाब देने का। मैंने कहा,

"पहले तो यह कोई कॉन्ट्रोवर्सी नहीं थी। मुझे स्क्रिप्ट पसंद नहीं आई। मैंने ना कर दिया। इस फ़िल्म में हीरोइन का किरदार सिर्फ़ ग्लैमर और हीरो के लव इंट्रेस्ट तक ही सीमित था। अगर मेरा किरदार फ़िल्म में कुछ प्रभाव डालता तो मैं बिना पैसों के भी उनके लिए फ़िल्म कर लेती। वैसे मैं करण भट्ट जी से कहना चाहती हूँ कि अब चीज़ें बदल रही हैं। हीरोइनों को ध्यान में रखकर भी फ़िल्में लिखी जा रही हैं। फिर भी अगर उन्हें लगता है कि उनका काम सिर्फ़ ग्लैमर दिखाने का है तो आप यह समझ लीजिए कि यह कुछ ऐसा ही है जैसे खाने में नमक का होना। नमक के बिना खाना कोई नहीं खाता। इसी बात का सम्मान कर

लीजिए। फिर भी अगर वो इस बात से सहमत नहीं हैं तो वो लड़कों को लड़की बनाकर उनसे काम चला सकते हैं। आज भी कई जगह रामलीला में सीता का रोल लड़के करते हैं। क्या पता किसी रोल में वह ख़ुद ही फिट हो जाएँ। क्यों हम पर इतना ख़र्चा करना! फ़िल्म को तो वैसे भी हीरो ने ही चलाना है।''

मेरी इस बात पर सभी प्रेस वालों को बहुत मज़ा आया था। सबने ख़ूब मिर्च मसाला लगाकर मेरी इस बात को छापा था। फिर अगले कुछ दिनों में मेरे हाथ से चार अच्छी फ़िल्में निकल गई थीं। एक का तो प्रोमो भी शूट हो गया था। रिक्कू जी ने पता लगाया। वह सब करण भट्ट के ख़ास दोस्त थे। लगभग एक साल मेरी कोई फ़िल्म नहीं आई थी। लेकिन वह चारों फ़िल्में भी बॉक्स ऑफ़िस पर कोई कमाल नहीं कर पाई थीं। अब इसे उन फ़िल्मों की क़िस्मत कहें या उन लोगों का कर्मा, आख़िर में तमाशा तो मैंने ही पॉपकॉर्न खाते हुए देखा था। हालाँकि उन फ़िल्मों के निर्माताओं ने उनके अन्यायपूर्ण व्यवहार के लिए मुझसे कोई माफ़ी नहीं माँगी थी मगर कुछ समय बाद और फ़िल्मों के प्रस्ताव लेकर मेरे पास ज़रूर आए थे। मैंने कभी किसी फ़िल्म में सिर्फ़ अपना चेहरा दिखाने के लिए काम नहीं किया था। मैं इस बात के लिए हर वक़्त तैयार थी कि अगर मुझे अपनी पसंद की फ़िल्में नहीं मिली तो मैं कुछ और कर लूँगी। मगर ऐसा वक़्त कभी आया ही नहीं। मुझे काम की कमी कभी हुई ही नहीं।

यादों का हाल भी रूसी गुड़ियों की तरह है—एक के अंदर एक छुपी हुई। एक को खोलो दूसरी साथ निकल आती है। बहरहाल, चलिए फिर से शिमला के क़िस्सों की ओर चलते हैं।

एक दिन जब बाबा लकड़ी काट रहे थे तब मैं उन्हें बता रही थी कि आज स्कूल में मिस ने पूछा कि हम बड़े होकर क्या बनना चाहते हैं? इस पर बाबा बोले, ''तुमने क्या कहा?''

''यही कि मुझे नहीं पता।''

''क्यों? तुम कुछ बनना नहीं चाहती?''

''क्या कुछ बनना ज़रूरी होता है?''

''नहीं बिलकुल नहीं। ज़रूरी वही होता है जो हमारा दिल चाहता है।'' बाबा भी मेरी तरह ही सोचते हैं, यह जानकर मेरा मन प्रसन्नता से भर गया था। मगर मेरी यह ख़ुशी कुछ पल भी न ठहर सकी। बाबा ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा, ''फिर भी अगर देखो तो हम जो भी करते हैं उसे करते-करते कुछ तो बन ही जाते हैं। अच्छा नहीं होगा अगर हम पहले से सोच ले कि हमें क्या बनना है? और फिर वही करें जो उस बनने के लिए ज़रूरी हो?''

''इसका मतलब हम अपने लिए नहीं कुछ बनने के लिए जीते हैं? फिर इसमें हमारी मर्ज़ी कहाँ रह गई!''

बाबा मेरी बात सुनकर कुछ पल सोच में डूब गए। फिर मुस्कुराकर बोले, ''दस साल के छोटे से दिमाग़ से इतना सब कैसे सोच लेती हो? तुम्हारी बात भी सही है मगर हमें क्या बनना है यह जानना हमें इसलिए चाहिए, ताकि हम पूरी ज़िंदगी इस बात को जानने के लिए न भटकते रहें कि हमें क्या करना अच्छा लगता है। और फिर क्या बनना है इसका निर्णय भी तो हम अपनी पसंद के हिसाब से ही तो लेते हैं! बिना कुछ बनने के सपने के

ज़िंदगी वैसी ही हो जाती है जैसे टाइम और कैलेंडर के बिना दुनिया हो जाती, Directionless.”

बाबा अपनी जगह सही थे। मगर जितना मुझे याद है उस वक़्त मुझे उनकी कुछ बनने के सपने के होने की थ्योरी ज़्यादा कुछ समझ तो नहीं आई थी। हाँ, मगर मैं यह सोचने ज़रूर लगी थी कि इतनी सारी चीज़ों में हम क्या बनें इस बात का निर्णय कोई किस तरह से ले सकता है। सोचते-सोचते कुछ देर तक मैं बाबा को लकड़ी काटते देखती रही। फिर मैंने उनसे पूछा, “बाबा, आप वह क्यों नहीं बने जो आप बनना चाहते थे?”

मेरे इस प्रश्न से बाबा का मूड एकदम से बदल गया था। उन्होंने लकड़ी काटना बंद कर दिया और कहा चलो बहुत हो गई बातें, अब घर चलते हैं। तब मुझे समझ नहीं आया था कि मैंने ऐसा क्या कहा जो बाबा को चुभ गया था। आज सोचती हूँ तो बाबा का दर्द मैं समझ पाती हूँ। उन्हें तो अपना सपना पूरा करने का एक मौक़ा भी नहीं मिला था। सफल और असफल होना तो बाद की बात थी। कोशिश न कर पाने का अफ़सोस इस दुनिया के सारे अफ़सोस से बड़ा होता है।

तब मेरी उम्र लगभग बारह साल की रही होगी, जब बाबा ने एक दिन अचानक आकर कहा, हम मुंबई घूमने जा रहे हैं। मैं बहुत ख़ुश हो गई थी क्योंकि मैं आज तक शिमला के बाहर नहीं गई थी। मुंबई मुझे एलिस के वंडरलैंड की तरह ही लगा था। शिमला जैसा वहाँ कुछ नहीं था। एक पूरा दिन हमने बड़े-बड़े सितारों के घर देखने और फ़िल्म सिटी और पृथ्वी थिएटर के चक्कर लगाने में लगा दिया था। बाबा उन्हें इस तरह से देख रहे थे जैसे बच्चा चाँद को न छू पाने पर उसे मायूसी से देखता है। जैसे आज यहाँ आकर उन्होंने अपनी कलाकार बनने के सपने को श्रद्धांजलि दे दी हो। शिमला वापस आने से एक दिन पहले हमने पूरा दिन जुहू चौपाटी पर गुज़ारा था। उस दिन बाबा बहुत ख़ुश थे। ऐसा लग रहा था जैसे कहीं खो गए थे, आज मिले हैं।

नाचते-गाते मस्ती करते शाम होने लगी थी। सूरज बस डूबने ही वाला था। बाबा ने उसे देखते हुए मुझसे कहा एक दिन मैं भी ऐसे ही डूब जाऊँगा। तब मुझे एक पल को ऐसे लगा था जैसे सब कुछ ख़त्म हो गया है। इस पूरी दुनिया में सिर्फ़ मैं अकेली बची हूँ। जैसे साइंस फ़िक्शन में दिखाते हैं अपॉक्लिप्स आ गया और कुछ नहीं बचा। उस तरह से अकेले हो जाने के डर का साया मैं आज अभी इस वक़्त भी अपने ऊपर मँडराता हुआ महसूस कर सकती हूँ। बस फ़र्क़ इतना है कि आज मेरे अलावा सब कुछ बचा हुआ है। वह आख़िरी बार था जब मैंने डूबता हुआ सूरज देखा था। आगे कभी जब भी उसके आगे से गुज़रना होता तो मैं अपनी आँखें बंद कर लेती थी।

बाबा ने मुझे मुंबई से बहुत सारे तोहफ़े दिलाए थे। मैं घर वापस आने के कुछ ही देर बाद उन्हें खोलने बैठ गई। तभी माँ ने कहा, जा बाबा को बुला ला, खाना लग गया है। मैं बाबा के कमरे में गई तो देखा बाबा पंखे से झूल रहे थे। मैं भागते हुए माँ के पास आई और कहा माँ बाबा मर गए। माँ ने मुझे एक ज़ोर से थप्पड़ लगा दिया और बाबा के कमरे की तरफ़ भागी। मैं रोते हुए यही सोच रही थी की यह आँसू बाबा के मरने पर हैं या सच बोलने पर माँ के मारने की वजह से? बाबा ने मरने से पहले एक चिट्ठी छोड़ी थी जिसमें में लिखा था-

'मुझसे ज़िंदगी का बोझ अब उठाया नहीं जा रहा था। सब कुछ बहुत अच्छा था। बस कोई भी उद्देश्य और संघर्ष बाक़ी नहीं रहा था। ऐसा लगता था जैसे मैं कोई गैस से भरा गुब्बारा हूँ जो बस उड़े जा रहा है। ज़िंदगी से जुड़े रहने के लिए हमारा वह काम करना ज़रूरी है जिसे करके हम ख़ुश होते हों। ऐसा नहीं है कि मैं अब तक अपने एक्टर बनने के सपने के पूरा न कर पाने का मलाल मन में लिए बैठा था। मगर मैं जो कर रहा था वह ज़िंदगी से जुड़े रहने के लिए काफ़ी नहीं था। परिवार, दोस्त हमारी ख़ुशियों का विस्तार हो सकते हैं, मगर उनका आधार नहीं। मैंने बहुत कोशिश की इस तरह से जीने की। मगर अब मुझसे कोशिश भी नहीं हो रही थी। मुझे अपनी ज़िंदगी बासी और नीरस लगने लगी थी। इसीलिए मैं अपनी जान ले रहा हूँ ताकि इस नीरस भरी ज़िंदगी से आज़ाद हो सकूँ।'

तब मैंने ख़ुद से वादा किया था कि मैं कभी भी ख़ुद को किसी भी चीज़ या हालात के आगे मजबूर नहीं होने दूँगी। मेरी पहली प्राथमिकता एक आज़ाद ज़िंदगी जीने की होगी। मैं वह कारण ही नहीं बनने दूँगी जिनकी वजह से चाहे वह सुख हो या दुख मुझ पर हावी होने लग जाएँ। मैं अपनी ज़िंदगी में कभी आसान रास्ते पर नहीं जाऊँगी। चीज़ें आसान होते ही नीरस हो जाती हैं।

बाबा का कमज़ोर पड़कर इस तरह आत्महत्या कर लेना मुझे कभी सही नहीं लगा था। बाबा ने मरकर अपनी नीरस ज़िंदगी से ख़ुद को आज़ाद तो कर लिया था मगर ज़िंदगी से तो दूर हो गए थे। किसी चीज़ से आज़ादी उसे खोकर या छोड़कर ही क्यों मिलती है? क्यों हम उनके साथ होते हुए ख़ुद को आज़ाद नहीं रख पाते? इसी दिन राजीव गाँधी की मद्रास में किसी ने हत्या कर दी थी। दिन था 21 मई 1991...

मेरी एक ही स्कूल फ़्रेंड थी शिल्पी जो तब स्कूल में आई जब मैं नौ साल की थी। उसके पापा मेरे बाबा के ही डिपार्टमेंट में थे। हम दोनों बहुत अच्छे दोस्त बन गए थे। बाबा के मरने के बाद उसी के साथ मेरा मन लगता था। लेकिन बाबा के मरने के एक साल बाद ही उसके बाबा का ट्रांसफ़र दिल्ली हो गया। तब उसने मुझसे कहा था, मैं 12वीं करने के बाद दिल्ली से ही आगे की पढ़ाई करूँ।

शिल्पी के चले जाने के बाद या तो मैं किताबें पढ़ती थी या फ़िल्में देखती थी। मुझे दुनिया भर का इतिहास भी अपनी ओर आकर्षित करता था। मैंने स्कूल की लाइब्रेरी में रखी इतिहास की हर किताब पढ़ डाली थी। मैं जब भी शिमला की कोई बहुत पुरानी बिल्डिंग देखती तो मुझे लगता जैसे इसने मेरे वर्तमान को अपने अतीत से जोड़ दिया है। मुझे लगता जैसे ये जानती है, मुझे इसकी कहानी पता है। किताबों का यही तो कमाल होता है। वह हमें दुनिया के कल से इस तरह जोड़ देती हैं जैसे हम उस कल से गुज़रकर ही आज यहाँ पहुँचे हों। जितना मैं दुनिया का इतिहास पढ़ती, उतना मुझे दुनिया देखनी की इच्छा होती।

बाबा ने भले ही फ़िल्में देखना छोड़ दिया था लेकिन उनकी वजह से मेरी दिलचस्पी फ़िल्मों में बढ़ गई थी। किताबें हो या फ़िल्में मुझे कहानियों में डूबे रहना पसंद था। क़रीब कहने वाला कोई दोस्त नहीं था मेरा। मैं किसी एक किरदार की जगह ख़ुद को रख लेती थी। फिर यही सोचती कि अगर ये किरदार मेरी तरह सोचते तो कहानी का अंत कितना अलग होता! पर मैंने हीरोइन बनने का सपना कभी नहीं देखा था, क्योंकि वह मेरे बाबा का